॥ श्री स्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संग शिक्षणश्रेणी की पाठ्यपुस्तक

किशोर सत्संग प्रवीण

लेखक

साधु सिद्धेश्वरदास (शास्त्री)

साधु श्रीहरिदास (वाचस्पति)

प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद - 380 004.

KISHORE SATSANG PRAVIN (Hindi Edition)
(Introduction to Swaminarayan Satsang beliefs, traditions and history)

By Sadhu siddheshwardas, Sadhu Shriharidas

A textbook for examination prescribed under the curriculum set by Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha.

Inspirer: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:

Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:

SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

2nd Edition:

January 2009, Copies: 2000 (Total Copies: 3,000)

Warning:

Copyright: ©Swaminarayan Aksharpith

This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material from this book cannot be used without due acknowledgement to Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any reprints the written permission of the publishers is necessary.

ISBN: 81-7526-226-5

रजूकर्ता : बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.)
'स्वामिनारायण अक्षरधाम', नेशनल हाईवे 24, अक्षरधाम सेतु,
यमुना किनारा, नई दिल्ली - 110 092.

प्रेरणामूर्ति : प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

सूचना : सर्वाधिकार सुरक्षित : © स्वामिनारायण अक्षरपीठ

इस पुस्तक के अंश किसी भी स्वरूप में प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की लिखित सम्मति अनिवार्य है।

द्वितीय संस्करण : जनवरी, 2009

प्रति : 2,000 (कुल प्रति : 3,000)

मूल्य : रु. 30.000 (स्वामिनरायण अक्षरपीठ के अनुदान से रु. 40.000) में से घटाया हुआ मूल्य।)

मुद्रक एवं प्रकाशक :

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद-380 004.

कृपाकथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित व पोषित युवक प्रवृत्ति तीव्र गति से विस्तृत होती जा रही है। इस प्रवृत्ति से जुड़े युवाओं की आकांक्षा तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने तथा उन्हें भगवान स्वामिनारायण प्रबोधित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत की ओर अभिमुख करने के उद्देश्य से बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था ने क्रमबद्ध पुस्तकों के प्रकाशन का आयोजन किया है।

इन पुस्तकों द्वारा बालकों और युवाओं को व्यवस्थित, सुगम तथा सरल ढंग से सत्संग का शुद्ध ज्ञान प्राप्त होगा। भगवान स्वामिनारायण द्वारा उद्‌बोधित आदर्शों के पालन व प्रचार के लिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था, इस प्रकार की अनेक सत्संग प्रवृत्तियों में संलग्न है कि जिससे विश्व में हमारी महान हिन्दू संस्कृति का प्रचार व प्रसार हो।

भगवान स्वामिनारायण का दिव्य संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो तथा सभी मुमुक्षुओं को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो इसी हेतु इन पुस्तकों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशन किया गया है।

इन पुस्तिकाओं के आधार पर सत्संग शिक्षण परीक्षाएँ आयोजित की जाएँगी साथ ही बालकों-युवकों को प्रमाणपत्र देकर प्रोत्साहित किया जाएगा। इस पुस्तकों को तैयार करने में ईश्वरचरण स्वामी, रमेशभाई दवे, किशोरभाई दवे तथा अन्य सहयोगियों ने भारी परिश्रम उठाया है, उनको हमारे आशीर्वाद हैं।

अत्यंत स्नेहपूर्वक

जय श्री स्वामिनारायण।

शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी

(प्रमुखस्वामी महाराज)

निवेदन

श्रीजीमहाराज द्वारा दिए गए वर्तमान, नियम तथा उपदेशों को सत्संगियों में प्रचलित करने की आज अहम आवश्यकता है। उनकी आज्ञा तथा नियमों में रहकर ही हम अपना जीवन-उत्कर्ष कर सकते हैं। इस तरह कुसंग से दूर रहकर एक आदर्श सत्संगी के रूप में हमारी पहचान बन सकती है तथा जीवन का परम श्रेय सिद्ध हो सकता हैं।

शिक्षापत्री के विशेष नियम, ध्यानचिंतामणि, श्रीधार्मिकस्तोत्रम्, श्रीजन-मंगलस्तोत्रम्, हठ-मान-ईर्ष्या, ध्यान-मानसीपूजा, आज्ञा-उपासना, महिमा-कल्याण संबंधी सामान्य ज्ञान, संप्रदाय के शास्त्र, संप्रदाय के तीर्थ, प्रभाती पद, प्रार्थना, सुभाषित, वचनामृत तथा 'गुणातीतानंद स्वामी का उपदेशामृत' का निरूपण एवं श्रीजीमहाराज के वरिष्ठ संतों-भक्तों के प्रेरणात्मक चरित्र इस पुस्तक में सरलता से प्रस्तुत किए हैं, जो सत्संगी वाचकों की ज्ञानवृद्धि में तथा सत्संग में रुचि उत्पन्न करने में सहायक होगा।

सत्संग शिक्षण परीक्षा के पाठ्यक्रम के उपलक्ष्य में इस पुस्तिका की रचना की गई है। चतुर्थ परीक्षा 'सत्संग प्रवीण' के लिए यह पुस्तक आपके हाथों में रखते हुए हम अत्यंत हर्षित है।

प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज को प्रसन्न करने के लिए सत्संगी बालक, युवक तथा जिज्ञासु इस पाठ्यक्रम की तैयारी करके, सत्संग शिक्षण परीक्षाओं में उच्च सिद्धयाँ प्राप्त करें यही अभ्यर्थना !

- प्रयोजक

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

हम तो हैं स्वामी के बालक, मरेंगे स्वामी के लिए ।
हम तो हैं श्रीजी के युवक, लड़ेंगे श्रीजी के लिए ।।

नही डरते नहीं करते, हमारी जान की परवाह ।
हमें है भय नहीं किससे, न हमको मौत की परवाह ।।

किया शुभ यज्ञ का आरंभ, हम बलिदान कर देंगे ।
हमारे अक्षरपुरुषोत्तम, गुणातीत गान गाएँगे ।।

हम तो हैं श्रीजी की संतान, स्थान है अक्षर में हमका ।
लगाई धर्मनिष्ठा की भभूत तो भय हमें किसका ? ।।

मिले हैं 'मोती' के स्वामी, उन्होंने बाँह ली थामी ।
प्रकट पुरुषोत्तम धामी, अक्षर ब्रह्म गुणातीत स्वामी ।।

क्रमिका

1. शिक्षापत्री 1
2. प्रार्थना 9
3. उका खाचर 10
4. अद्‌भुतानंद स्वामी 12
5. साधु तथा पार्षद 14
6. प्रभाती पद 17
7. हठ, मान व ईर्ष्या 18
8. संप्रदाय के तीर्थस्थान 24
9. श्री धार्मिकस्तोत्रम् 25
10. सोमला खाचर 28
11. जेतलपुर की गणिका 30
12. संप्रदाय के शास्त्र 32
13. ध्यान 42
14. मानसी पूजा 45
15. जनमंगलस्तोत्रम् 48
16. जेठा मेर 54
17. कृपानंद स्वामी 56
18. वचनामृत 58
19. राजाभाई 62
20. स्वयंप्रकाशानंद स्वामी 65
21. ध्यानचिंतामणि 66
22. आज्ञा 70
23. उपासना 72
24. रामबाई 77

25. सुरा खाचर..... 78
26. फगुआ 81
27. अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी का उपदेशामृत 82
28. बंधिया के डोसाभाई..... 89
29. मूलजी और कृष्णजी 91
30. महिमा 96
31. कल्याण 98
32. सुभाषित 99
33. भक्तराज मगनभाई 101

1. शिक्षापत्री

(विशेष नियमों की समझ)

भगवान स्वामिनारायण द्वारा लिखित स्वामिनारायण संप्रदाय की आचार संहिता का ग्रन्थ है : शिक्षापत्री। इस 212 श्लोक के छोटे से ग्रन्थ की रचना संवत् 1882 (सन् 1826) में हुई। इसमें समाज के विभिन्न स्तर के अनुयायीओं के आचार की आधारशिला सुदृढ़ हो, इसी कारण उनकी धर्ममर्यादा की शिक्षा दी गई है।

इस प्रकरण में शिक्षापत्री को साररूप में प्रस्तुत किया गया है।

गृहस्थाश्रमी के विशेष धर्म

गृहस्थ पुरुष अपने निकटतम संबंधी के अलावा किसी भी विधवा स्त्री का स्पर्श न करें। स्पर्श हो जाने पर वस्त्र सहित स्नान करके प्रायश्चित्त करें। युवा अवस्था युक्त अपनी माता, बहन व पुत्री के साथ भी एकांत में न रहें। आपत्काल में स्त्री की रक्षा के प्रयोजनार्थ तक ही स्त्री-प्रसंग रखें। ये बातें विद्वानों तथा शास्त्रज्ञों पर भी लागू होती है। शास्त्र में कहा है :

पद्मासनोऽपि कामेन व्याकुलात्मा निजात्मजाम् ।
दृष्ट्वा सरस्वतीं मोहं प्राप निन्दां च दुर्दशाम् ॥

'पद्मासनधारी पितामह ब्रह्माजी भी काम से व्याकुल होकर अपनी पुत्री सरस्वती पर मोहित हुए, जिससे वे दुर्दशा और निंदा को प्राप्त हुए।'

अपनी स्त्री का दान कदापि नहीं करना चाहिए। इससे पत्नी के पतिव्रता धर्म का नाश होता है और दान करनेवाले को बड़ा पाप लगता है।

इस तरह श्रीहरि ने ब्रह्मचर्य की रीति बताकर, आश्रितों को शुद्ध जीवन जीने की प्रेरणा देकर स्त्री-जाति के प्रति अपना आदरभाव व्यक्त किया है।

राजा के अंत:पुर में आने-जानेवाली स्त्रियों के साथ किसी भी प्रकार का संबंध न रखें, आपत्काल में भी उनके साथ बोल-चाल का व्यवहार नहीं करना चाहिए। ऐसी स्त्रियों का संग करने से प्रतिष्ठाहीन होने या किसी बड़े संकट में पड़ जाने की संभावना का निर्देश भगवान स्वामिनारायण ने दिया है। (135-137)

न विद्यते तिथिः द्वादश्यादि र्नियता यस्य इति अतिथिः । अर्थात् गृहस्थ के घर बिना किसी द्वादशी आदि निश्चित तिथि के पहुँचनेवाला व्यक्ति 'अतिथि' कहलाता है। अतिथि के घर आने पर अपने सामर्थ्य के अनुसार उनका भोजन, वस्त्रादि से आदर करना चाहिए। उसी प्रकार देवताओं को होमादिक करके प्रसन्न करना चाहिए। पितृकर्म भी यथाशक्ति करना चाहिए। यहाँ भगवान स्वामिनारायण का धार्मिक और शास्त्रोक्त प्रणालियों का जतन करने का सिद्धांत प्रकट होता है। (138)

प्रत्येक सत्संगी को अपनी जन्म देनेवाली माता, सौतेली माता, पिता, गुरु तथा रोग से पीड़ित व्यक्ति की सेवा जीवन पर्यन्त करनी चाहिए। सेवा की बड़ी महिमा है। भगवान स्वामिनारायण ने वनविचरण के दौरान सेवकराम की सेवा बड़ी श्रद्धापूर्वक की थी। पंचाला गाँव के ठाकुर साहब झीणाभाई दरबार ने भी रोग से पीड़ित भक्त कमलशी वांझा की महीनों तक अपने घर रखकर सेवा की थी। इससे प्रसन्न होकर उनके अंतकाल पर स्वयं श्रीजीमहाराज ने उनकी अर्थी उठाई थी और हमें सेवाधर्म की महत्ता समझाई थी। अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी भी वरताल में रोगी साधुओं की अनेक प्रकार से सेवा करते थे। सचमुच सेवा की महिमा अपरंपार है। (139)

अपने वर्ण और आश्रम के योग्य उद्यम यथाशक्ति करें परंतु अपने से अधिक तथा कम संपत्तिवालों को देखकर दुःखी नहीं होना चाहिए। कृषिवृत्तिवाले गृहस्थ सत्संगियों को बैलों के वृषणों का उच्छेद नहीं करना चाहिए। (140)

सत्संगी भक्तों को अपनी शक्ति के अनुसार देश, काल व परिस्थिति को देखते हुए अपनी आवश्यकतानुसार अनाज, द्रव्य इत्यादि का संग्रह करना चाहिए। इस तरह संगृहित धन-धान्य विपरित परिस्थितियों में काम में आता है, जिससे कर्ज़ लेना नहीं पडता।

घर में पशु तभी रखने चाहिए, जब उनके चारे-पानी की व्यवस्था हो सकती हो। पशुओं के प्रति भी दयाभाव रखना चाहिए। यदि उनकी संभावना अपने से नहीं हो सकती, तो दूसरे सुज्ञ-दयावान जनों को पालने के लिए सौंप देना चाहिए। (141, 142)

दो प्रतिष्ठित धर्माचरणवाले, शुद्ध चरित्रवाले गृहस्थों की लिखित

साक्षी में ही भूमि, खेत, घर, द्रव्य, गहने आदि की लेन-देन करनी चाहिए। विवाह जैसे शुभ कार्यों के निर्णय में भी साक्षी रखने चाहिए। इस तरह की सावधानी से हमें कोर्ट-कचहरी के धक्के खाने नहीं पड़ेंगे और हमारा जीवन निर्विघ्न बना सकेंगे। (143, 144)

हमें आय के अनुसार ही खर्च करना चाहिए। आय से अधिक व्यय करनेवाले कर्ज़ में डूब जाते हैं। इससे दु:ख उत्पन्न होता है। प्रतिदिन अपने आय-व्यय का हिसाब स्वच्छ अक्षरों से हिसाबबही में लिखना चाहिए। अपना हिसाब दूसरों से लिखवाने से धोखाखड़ी की संभावना रहती है। श्रीजीमहाराज ने वच. ग.प्र. 38 में कहे अनुसार हमें आध्यात्मिक मार्ग में की गई प्रगति का भी हिसाब रखना चाहिए। (145, 146)

सत्संगियों को अपनी आय का दसवाँ भाग ठाकुरजी को धर्मदान के रूप में अर्पण करना चाहिए। जो व्यक्ति व्यवहार में दुर्बल हो वह बीसवां भाग अर्पण करें। ऐसे धर्मदान से द्रव्य की शुद्धि होती है। अन्यथा मलिन धन आदि से सत्त्वगुण का क्षय होता है। (147)

एकादशी, हरिनवमी (चैत्र शुक्ला नवमी) तथा चांद्रायणादिक व्रत का उद्यापन तथा पूर्णाहुति अपनी शक्ति के अनुसार दान, होम, ब्रह्मभोजन और महापूजा करवाकर करना चाहिए। इससे हमारी सभी मनोकामनाएँ सिद्ध होती है। श्रावण मास में महादेव पूजन की विशेष महिमा है। अत: शिवजी का पूजन भी करना चाहिए। सत्संगियों को सर्व देवों का आविर्भाव अपने इष्टदेव श्री स्वामिनारायण भगवान में करके भक्तिभावर्पूवक पूजन करना चाहिए, जिससे महाफल की प्राप्ति हो। (148, 149)

देव तथा धर्मदान के द्रव्य का स्वार्थ के लिए उपयोग करने से पुण्य का क्षय होता है। अत: देवद्रव्य लेना नहीं चाहिए। पात्र, बर्तन, गहने, वस्त्र, वाहन तथा ईंट, पत्थर जैसी वस्तुएँ भी मंदिरों से माँगनी नहीं चाहिए। (150)

मंदिर, गुरु तथा साधु के दर्शनार्थ जाते समय मार्ग में या किसी स्थान पर पराया अन्न नहीं खाना चाहिए। यदि परिस्थितिवश अन्नादि ग्रहण करना भी पड़े तो उसके बदले में कुछ न कुछ भेंट देकर ऋणमुक्त हो जाना चाहिए। सेवाकार्य के लिए धर्मस्थान में निवास करने पर अन्नादिक ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है। (151)

अपने काम के लिए लगाए गए गरीब मजदूरों के प्रति दयावान होकर उन्हें निश्चित किया हुआ धन-धान्य दे देना चाहिए। लोभवश उसमें कमी नहीं करनी चाहिए। कर्ज़ चुकाते समय दो साक्षी अनिवार्य है। अपना वंश व कन्यादान कदापि छुपाना नहीं चाहिए। कन्यादान के समय संबंधीजनों की उपस्थिति आवश्यक मानी गई है। (152)

धनिक सत्संगियों को हिंसा रहित, तथा इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण से संबंधित यज्ञ करने चाहिए। भगवान स्वामिनारायण तथा संतों के प्रसादीभूत मंदिररूपी तीर्थों में, श्रीहरि तथा उनके धारक संतों के संबंधवाले स्थानों पर द्वादशी, पूर्णिमा आदि उत्सवों पर साधु, पार्षद, हरिभक्तों को भोज देना तथा संतों-पार्षदों के लिए वस्त्रदान भी करना चाहिए। मंदिरों में दान करना, भगवान की सेवा-पूजा एवं ब्राह्मण-गरीब सत्संगी को दान देना चाहिए। (155, 156)

राजा के विशेष धर्म

शास्त्रों की आज्ञानुसार सत्संगी राजा को अपनी प्रजा का पुत्र की तरह आत्मबुद्धिपूर्वक पालन-पोषण करना चाहिए। अपने राज्य में देवमंदिर का निर्माण, शास्त्रों की रचना करवाना आदि धर्मकार्यों से धर्म की स्थापना करनी चाहिए। सत्संगी राजा को राज्य के सात अंग - स्वामी, अमात्य, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग तथा बल (सेना), चार उपाय (साम, दाम, भेद व दंड) व छह गुण : संधि, विग्रह (शत्रु पक्ष को लूँटना, जला देना आदि), यान (शत्रु के साथ युद्ध), द्वैधीभाव (दुश्मन की सेना को विभाजित कर देना), समाश्रय (हार के कगार पर आने पर बलवान का आश्रय लेना), स्थान (हार के समय किले में रक्षण लेना) इन सभी का यथार्थ ज्ञान होना चाहिए। तीर्थस्थान तथा गुप्तचरों को भेजने का ज्ञान एवं व्यवहार के ज्ञाता-प्रधान, पुरोहित, सेनापति आदि तथा योग्य न्यायाधीश की नियुक्ति कर दंडनीय व निर्दोष का भेद भी समझना चाहिए। (158)

इस तरह श्रीहरि ने गृहस्थों के लिए माँस, मदिरा, चोरी, व्याभिचार और धर्म परिवर्तन का निषेध किया है। इन पाँचों नियमों को धारण करनेवाला सत्संगी पंचवर्तमानी कहलाता है।

सधवा स्त्रियों के विशेष धर्म

सधवा स्त्री अर्थात् जो विवाहित हो, और जिसका पति जीवित हो, ऐसी स्त्री।

श्रीहरि शिक्षापत्री में बताते हैं : जिन सधवा स्त्रियों के पति यदि अंध हों, रोगी हों, दरिद्र हों या नपुंसक भी क्यों न हों तो, उन्हें अपने-अपने पतियों की परमेश्वर मानकर सेवा करनी चाहिए। पति के प्रति कभी भी कटु वचन नहीं बोलने चाहिए। कभी भी दूसरे पुरुष के रूप, गुण और यौवन का बखान नहीं करना चाहिए। नारी को हमेशा शालीन वस्त्र धारण करने चाहिए। वस्त्र रहित स्नान नहीं करना चाहिए। नाटक-सिनेमा तथा ग्राम्यवार्ता में आसक्तिपूर्वक लगे रहने से परिवार की सेवा और अपने कर्तव्य में रुकावटें पैदा होती हैं। अतः मनोरंजन से वृत्ति को संयमित करके भगवान में वृत्ति लगानी चाहिए।

स्वैरिणी (स्वज्ञाति के पुरुषों में आसक्त, स्वच्छंद विहार करनेवाली), कामिनी (स्व तथा परज्ञाति के पुरुषों में आसक्त), पुंश्चली (अपने संबंधियों में भी आसक्त) स्त्रियों का प्रसंग न करें। पति के परदेश जाने पर सुंदर वस्त्राभूषण नहीं पहनें तथा अत्यधिक आनंद-प्रमोद का त्याग करें। ये सभी नियम स्त्री के शील की रक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है। (159-162)

विधवा स्त्रियों के विशेष धर्म

विधवा स्त्रियों को अपने इष्टदेव के प्रति पतिभाव रखते हुए भगवत्परायण जीवन जीना चाहिए। पिता अथवा पुत्र की निश्रा में ही रहकर जीवन बीताना चाहिए। निकटतम संबंधियों के अलावा न तो किसी पुरुष से बोलना चाहिए और न ही स्पर्श करना चाहिए। छोटे बच्चों के स्पर्श का दोष नहीं है। किसी अत्यावश्यक काम के लिए वृद्ध के साथ बोलने में भी कोई हर्ज नहीं है। विद्या सीखने के निमित्त भी अन्य पुरुष का प्रसंग न करें। देहदमन करके मात्र भगवान की प्रसन्नता पाने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने जीवन पर्यन्त देहनिर्वाह हो सके, उससे अधिक संपत्ति हो तो ही दान करें, अन्यथा नहीं। विधवा स्त्री को अपने धर्म की रक्षा हो वैसे ही वस्त्र

धारण करने चाहिए और धर्मिष्ठ स्त्रियों का ही संग करना चाहिए। होली का खेल, जहाँ स्त्री-पुरुष मर्यादा का उल्लंघन होता हो, नहीं खेलना चाहिए।

सधवा व विधवा स्त्रियाँ अपने रजस्वला अवस्था के धर्म-नियमों का शास्त्रों की आज्ञा अनुसार अवश्य पालन करें। (163-174)

नैष्ठिक ब्रह्मचारी साधुओं के विशेष धर्म

भगवान स्वामिनारायण में अनन्य निष्ठा रखनेवाले तथा आठ प्रकार के ब्रह्मचर्य का जीवन पर्यन्त पालन करनेवाले त्यागी नैष्ठिक ब्रह्मचारी साधु कहलाते हैं। आठ प्रकार का ब्रह्मचर्य इस प्रकार कहा गया है :

(1) स्त्री की बातें नहीं सुनना, (2) उसके गुणों का वर्णन नहीं करना, (3) स्त्री के साथ हास्यविनोद नहीं करना, (4) स्त्री की क्रियाओं का निरीक्षण नहीं करना, (5) स्त्री के साथ एकांत में गुप्त बातें नहीं करना, (6) उसे पाने का संकल्प न करना, (7) स्त्री के रूप में बाल, यौवन, वृद्ध, रूप-कुरूप आदि विक्ति नहीं करना तथा (8) साक्षात् अंगसंग का त्याग। इस तरह आठ प्रकार के ब्रह्मचर्य को लक्ष्य में रखकर नियम बताएँ गए हैं।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी साधुओं को स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिए, उसके साथ वार्तालाप नहीं, उसके सन्मुख देखना नहीं, उसकी बातें नहीं करना, न ही सुनना, जहाँ स्त्रियों की चहल-पहल हो वहाँ स्नानादि क्रिया करने न जाना।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी साधुओं को राधिकाजी, लक्ष्मीजी आदि देवियों की प्रतिमाओं के अलावा अन्य प्रतिकृति का भी स्पर्श नहीं करना चाहिए। इस तरह अपने अष्टांग ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिए। स्त्री को लक्ष्य करके भगवान की कथा भी नहीं करनी चाहिए। इससे भी मन के दूषित होने का भय रहता है और नैष्ठिक व्रत का हनन होता है।

अपने ब्रह्मचर्यव्रत का नाश हो ऐसा वचन तो गुरु का भी नहीं मानना चाहिए। स्मृतिग्रंथों का वचन है कि '**सर्वथा पालनीयैव शिष्यैराज्ञा गुरोरिह।**' शिष्यों को सर्व प्रकार से गुरु की आज्ञा माननी चाहिए। इस वचन को जानते हुए भी श्रीहरि स्पष्ट कहते हैं, 'गुरु के वचन यदि ऐसे हो कि जिससे ब्रह्मचर्य

व्रत का नाश होता हो तो किसी भी परिस्थिति में वह नहीं मानना चाहिए।'

एक बार श्रीहरि ने निष्कुलानंद स्वामी को स्त्रियों की सभा में कथा करने के लिए कहा। परंतु निष्कुलानंद स्वामी नहीं गए। श्रीहरि ने निष्कुलानंद स्वामी को बुलाकर कहा, 'मुनिवर्य ! आपने हमारी आज्ञा नहीं मानी, इसलिए आपको विमुख करना पड़ेगा।'

निष्कुलानंद स्वामी ने हाथ जोड़ते हुए कहा, 'महाराज! आपकी आज्ञा का पालन नहीं होने से मैं विमुख होने के लिए तैयार हूँ, पर स्त्रियों की सभा में जाकर अपने धर्म से विमुख नहीं होना चाहता।' ऐसे दृढ़ वचन सुनकर श्रीहरि प्रसन्न हो उठे।

ब्रह्मचारियों को धीरज व संतोष युक्त होकर निर्मानी रहना चाहिए। (175-180)

भगवान स्वामिनारायण के समय अनेक मतवादी स्वामिनारायणीय संतों को बहुत परेशान किया करते थे। संतों को प्रायश्चित्त का उपवास करना पड़े इसी कारण जान-बूझकर वे व्यभिचारी स्त्रियों को संतों के पीछे दौड़ाते। ऐसे समय पर श्रीहरि ने आज्ञा की थी कि ऐसी स्त्रियों को तिरस्कृत करके भी भगा देनी चाहिए। लेकिन जब आपत्काल हो तब में स्त्रियों की रक्षा करने का आदेश भी श्रीहरि ने दिया है। इस प्रकार उन्होंने नियमों की शृंखला को जड़ न बनाकर, आत्मकल्याणार्थ दुर्लभ मनुष्य देह की रक्षा करने का भी उपदेश दिया है। (181, 182)

नैष्ठिक ब्रह्मचारी साधुओं को अपने शरीर पर सुगंधित तैल-मर्दन नहीं करना चाहिए। शस्त्र धारण न ही करना चाहिए। शस्त्र से हिंसा करने की कुबुद्धि उत्पन्न होती है। रसेन्द्रिय को विशेषरूप से जीतें, तभी सभी इन्द्रियों को जीता जा सकता है। भिक्षा के समय भी स्त्रियों का योग न हो इसका ध्यान रखना चाहिए। (183, 184)

मन को निर्विषयी करने के लिए नैष्ठिक ब्रह्मचारियों को शास्त्राभ्यास करना चाहिए। भगवान वेदव्यास रचित शास्त्रों के उपरांत वचनामृत, शिक्षापत्री, स्वामी की बातें, भक्तचिंतामणि, श्रीहरिलीलामृत, निष्कुलानंद काव्य, सत्संगिजीवन, श्रीहरिलीलाकल्पतरु आदि ग्रंथों का सेवन ब्रह्मचारी के लिए अनिवार्य है। गुरुजनों की सेवा करने के साथ-साथ ऐसे मित्रों का संग

करें जो स्त्रियों से अनासक्त हो। (185)

ब्राह्मण तथा अन्य वर्णधर्मियों को प्याज, लहसून आदि अभक्ष्य वस्तु तथा चर्मवारि (चमड़े की मशक जैसे अशुद्ध पात्र से निकाला गया जल) ग्रहण नहीं करना चाहिए। सभी देवों को अपने इष्टदेव स्वामिनारायण भगवान में ही समाहित मानकर पूजादि कर्म करना चाहिए। (186, 187)

साधुओं को स्वयं द्रव्य का संग्रह नहीं करना चाहिए तथा दूसरों के पास भी द्रव्यसंग्रह नहीं कराना चाहिए। धनोत्पत्ति करनेवाले साधनों से भी दूर रहना चाहिए। धन आदि के संग्रह से अपरिग्रहव्रत का नाश होता है, तथा ममत्व हो जाने से मोक्षमार्ग में विघ्न उपस्थित होता है। (188, 189)

साधुओं को लोगों के व्यवहार में मध्यस्थता नहीं करनी चाहिए। दूसरों की अमानत भी अपने पास नहीं रखनी चाहिए। साधु सदा धैर्यवान रहें, अपना पड़ाव स्त्री-संसर्ग से मुक्त रखें, अपने ब्रह्मचर्यव्रत की रक्षा के लिए रात्रि के समय संघ-सोबत के बिना न चले, तथा बिना जोड़ (अन्य सहयोगी साधु) के कहीं भी न जाएँ। आपत्काल तथा मलमूत्रोत्सर्जन के लिए अकेले जा सकते हैं। (190, 191)

साधुओं को बहुमूल्य वस्त्र नहीं पहनने चाहिए। सादे, सूती व मोटे वस्त्रों को भगवे रंग की धूल में रंगकर पहनने चाहिए। इसके अलावा भेंट में प्राप्त वस्त्र भी न पहनें। शीत ऋतु में भगवे रंग की शाल पहन सकते हैं।

सद्‌गुरु गोपालानंद स्वामी को एक बार एक हरिभक्त ने आग्रहपूर्वक महीन, रेशमी धोती देते हुए प्रार्थना की, 'स्वामी ! यह वस्त्र आप पहनें।'

गोपालानंद स्वामी ने बहुत मना किया पर हरिभक्त ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। गोपालानंद स्वामी ने पूछा, 'इस रेशमी वस्त्र को कब तक पहनूँ?'

हरिभक्त ने कहा, 'जब तक फटे नहीं...'

गोपालानंद स्वामी ने तुरन्त कसकर धोती बांधी। बैठते ही धोती फट गई। इस तरह हरिभक्त का मान भी रखा और अपना धर्म भी निभाया।

भिक्षा एवं सभाप्रसंग के सिवा साधुओं को गृहस्थों के घर नहीं जाना चाहिए। जिस गृहस्थ के घर का अन्न उपयुक्त हो उसी के घर भोजन करें। (193-195)

केवल अपने देह की ही सेवा-सुश्रूषा नहीं करनी चाहिए। निरन्तर

देहदमन करके भक्तिपरायण जीवन जीएँ। तम्बाकु, अफ़ीम, गांजा आदि मादक पदार्थों का सेवन कभी नहीं करना चाहिए। सूतक के समय गृहस्थ के घर भोजन न करें। आरामदायक पलंग, खटिया का प्रयोग न करें। अपना स्वभाव मृदु रखें। साधु के मन में तथा बाहरी वर्तन में कोई भेद न हो, साधु को सदा निष्कपट रहना चाहिए। (196-200)

साधु को सदा क्षमापरायण होना चाहिए। कोई मारे, गाली दे तो भी केवल सहन ही करना चाहिए। उलटा उसका हित ही सोचना चाहिए। साधु का सारा जीवन परहितकारी होना चाहिए। उसे दूसरों का अहित करने का संकल्प भी कैसे हो ? उगा खुमान द्वारा मार खाने और तिरस्कृत होने के बावजूद स्वामी ने उसे क्षमादान देकर आशीर्वाद दिए। परिणामस्वरूप उसके घर पुत्र जीवणा खुमाण का जन्म हुआ। जीवणा खुमाण बहुत बड़े एकांतिक भक्त हुए।

आणंद में श्रीजीमहाराज तथा संतों का बहुत अपमान हुआ, परंतु फिर भी बदले में उन्होंने यही संकल्प किया कि सभी द्वेषी लोग सत्संगी बने। इस तरह क्षमाशील होना ही साधु का धर्म है, इसे कभी ना भूलना। (201)

साधुओं को असभ्य वर्तन, दूतगीरी, चुगलबाजी, गवाही देना आदि से बचना चाहिए। किसी का रहस्य दूसरों के सामने कभी प्रकट नहीं करना चाहिए। इससे दूर रहने से ही साधुओं का स्वभाव सरल बना रह सकता है, अन्यथा नहीं। इसके साथ ही साधुओं को अपने संबंधी जनों से ममत्व नहीं रखना चाहिए। यह मोक्ष मार्ग में बड़ी बाधा है। (202)

श्रीहरि ने साधुओं के लिए निष्काम, निर्लोभ, नि:स्वाद, नि:स्नेह व निर्मान ये पाँच वर्तमान दिए हैं।

2. प्रार्थना

(राग बिलावल)

जयसि नारायण सर्वकारण सदा,
जयसि अक्षरपति अंतर्यामी;
जयसि धर्मात्मज प्रकट पुरुषोत्तम,
जयसि सहजानंद सुखद स्वामी. जय॰ 1

रटत दशशतवदन निगम आगम सदा,
जयसि त्वं नमत सुर शीश नामी;
जयसि त्वं भजत मुनि भक्त निष्काम जन,
जयसि दातार कैवल्यधामी. जय॰ 2
काल माया पुरुष ! रचत ब्रह्मांड बहु,
परम पुरुष ! तव दृष्टि पामी;
होत पालन प्रलय तव भृकुटी भंग करी;
जयसि सर्वेश्वर ! अहं नमामि. जय॰ 3
जयसि कमलापति जयसि नैष्टिक जति,
जयसि त्वं भजत पुरुष अकामी;
जयसि परमेश्वर! तव चरण शरण में,
आयो प्रेमानंद गरुडगामी. जय॰ 4

3. उका खाचर

'अरे रे...! महाराज के बैठने के स्थान इस चबूतरे को कुत्ते ने मल से गंदा कर दिया। बाक़ी तो ठीक, परंतु महाराज जब सभा में आएँगे तो कहाँ बिराजमान होंगे ? छी:... छी:... बहुत बुरा हुआ, पर क्या करें? कुत्ते का तो स्वभाव ही ऐसा होता है।'

प्रात:काल भक्तजन अपने नियमानुसार गढ़पुर में महाराज के दर्शन के 'अक्षरकुटिर' में जा रहे थे, सभी की दृष्टि कुत्ते द्वारा बिगाड़े गए चबूतरे पर पड़ती और मन ही मन कुत्ते को कोसते हुए चले जाते। महाराज के दर्शन छोड़कर, पुन: स्नान करना पड़े ऐसा काम कौन करे? किसी का भी उसे साफ करने का मन नहीं हुआ। भक्तजन श्रीहरि के सम्मुख आकर बैठ गए।

कुछ समय के बाद उका खाचर उन्मत्त गंगा से स्नान करके श्रीहरि के दर्शन करने आ रहे थे। नीमतरु के नीचे चबूतरे पर उनकी दृष्टि पड़ी तो तुरन्त बिना कुछ बोले झाडू व पानी लेकर चबूतरे को धो डाला। पुन: घेला नदी पर जाकर स्नान करके सभा में आ पहुँचे। श्रीहरि ने उन्हें देखते ही प्रश्न किया, 'भक्तराज! रोज तो जल्दी आ जाते हो, आज कहाँ रुके रहे ?

सूर्यवंशी तो नहीं हुए ?'

भक्तजन को हमेशा प्रात:काल सूर्योदय से पूर्व ही उठ जाना चाहिए, ऐसा श्रीहरि का आग्रह था। उका खाचर तो सच्चे सेवक थे, अत: मौन रहे।

एक हरिभक्त ने उका खाचर के देर से आने का कारण बता दिया। सभी को लगा कि देर से आने के लिए श्रीहरि उका खाचर को उलाहना देंगे, परंतु वे तो यह जानकर प्रसन्न हो गए कि उका खाचर ने ऐसी निम्न प्रकार की सेवा भी बड़े भाव के साथ की थी ! उन्होंने खड़े होकर उका भक्त को गले से लगा लिया। उनकी छाती में चरणारविंद की छाप दी फिर सभा में उपस्थित भक्तों को संबोधित करते हुए श्रीहरि बोले, 'आप सभी ने वृक्ष के नीचे गंदे चबूतरे को देखा था। आपस में चर्चा भी की, किन्तु गंदगी साफ करने का किसी को संकल्प तक न हुआ। जिसे उका खाचर की तरह हमारी महिमा समझ में आई है, वही ऐसी सेवा कर सकता है।'

उका खाचर को सेवा का बड़ा व्यसन था। वे तथा उनके परिवार के सदस्य प्रात: जल्दी उठकर स्नान-पूजा से निवृत्त हो, दादा के दरबार से लेकर उन्मत्त गंगा तक का सारा रास्ता झाड़ू से साफ कर देते। रास्ते पर से छोटे-बड़े कंकड़ चुन लेते जिससे संतों-भक्तों को प्रात:काल स्नान करने जाते समय बहुत राहत मिलती। गर्मी के दिनों में सारे रास्ते पर पानी छिड़कना उनका नित्यक्रम था, जिससे पथिकों को ठंडक का एहसास होता।

उका भक्त का अंत:करण सेवाभाव से छलक रहा था, उनकी श्रद्धा अपार थी। उका खाचर न केवल श्रीहरि की सेवा करते थे, बल्कि तमाम संतों-भक्तों की सेवा भी एकरत होकर किया करते थे।

उका खाचर अपने सेवाभाव के कारण तथा निरहंकारी होने के कारण सारे संप्रदाय में प्रसिद्ध है। भगवान स्वामिनारायण उनकी सेवा से प्रसन्न होकर वच. ग.म. 25 में कहते हैं, 'जिसे उका खाचर की तरह सेवा का व्यसन हो, उसकी वासना का तत्काल नाश होता है।' व्यसन अर्थात् जिसके बिना रहा न जाए।

धन्य है उका खाचर को और उनकी सेवा-भक्ति को !

4. अद्‌भुतानंद स्वामी

अद्‌भुतानंद स्वामी श्रीहरि के परमहंस थे। उनका जीवन वास्तव में बड़ा अद्‌भुत था। उनका जन्म गुजरात राज्य के सुरेन्द्रनगर जिले के कडु गाँव में हुआ था। स्वामी के पूर्वाश्रम का नाम कल्याणदास था। पिता का नाम संधा पटेल तथा माता का नाम देवुबाई था। इस गाँव में श्रीहरि अनेकबार पधारे थे तथा गाँव के बाहर तालाब में संतों के साथ स्नान-लीला की थी।

रामानंद स्वामी ने जब संवत् 1852 (सन् 1796) में कारियाणी गाँव में अन्नकूटोत्सव मनाया था, तब कल्याणदास अपने चाचा के साथ रामानंद स्वामी के दर्शन करके उनके द्वारा वर्तमान धारण कर सत्संगी बने।

रामानंद स्वामी के देहावसान के बाद उन्हें भगवान स्वामिनारायण का दर्शन सर्व प्रथम मांगरोल में हुआ। कल्याणदास को मेथाण गाँव के निवासी अपने मामा अजा पटेल से सत्संग विरासत में मिला था। उनके पिता को बिलकुल सत्संगी नहीं थे, परंतु माता देवुबाई अपने पिहर से सत्संग लेकर आई थीं। उनकी भजन-भक्ति की प्रकृति तथा प्रवृत्ति संधा पटेल को बिल्कुल पसंद नहीं थी। पति के क्रोधी व हठाग्रही स्वभाव के कारण देवुबाई को जीवनभर मुश्किलों का सामना करना पड़ा था, फिर भी अपने पुत्रों को सत्संग के शुभ संस्कार देने में उन्होंने किसी प्रकार की कमी नहीं छोड़ी।

गाँव में संधा पटेल का घर सुखी माना जाता था। उचित समय पर कल्याणदास की सगाई मेथाण गाँव में की गई। उनके मामा अजा पटेल की छत्रछाया में विवाह की तैयारी पूर्ण हुई। बारात आ पहुँची। उसी समय अजा पटेल के नाम पर भगवान स्वामिनारायण का एक पत्र आया, 'मांचा, सुरा, सोमला, अलैया, मूलु, नाजा, मातरा, मामैया, अजा, जीवा, वीरदास, लाधा, काला, करमशी आदि भक्तजन घर में हो, सीमा पर हो, जहाँ पर खड़े हो, खाना-पीना छोड़कर, तत्काल निकल पड़ें। कर्मयोगी, सांख्ययोगी हरिजन जो भी निकल सके, संसार को छोड़कर निकल जाना। हमें बहुत प्रसन्नता होगी। मात्र राजा के कुँवर हो तो उसे त्यागी होने से रोक देना, फिर भी यदि हठ करे तो हम उसके पीछे हुई उपाधि को संभाल लेंगे।'

पत्र पढ़ते ही अजा पटेल तो तुरंत त्यागी होने के लिए तैयार हो गए !

कल्याणदास ने यह देखा तो उन्होंने भी महाराज का पत्र दो-तीन बार पढ़ा, और निर्णय ले लिया कि अब मैं भी त्यागी होकर गृहत्याग करना चाहता हूँ ! अजा पटेल ने कहा, 'बेटा, इसमें तेरा नाम तो नहीं है।'

कल्याणदास तुरंत बोले, 'नामों के अन्त में 'आदि' शब्द तो लिखा है। इसी में मेरा नाम आ गया।'

भांजे का अटल निर्णय देखकर वे मौन रह गए। विवाह के शुभप्रसंग पर ऐसी विचित्र बातें सुनकर रिश्तेदारों तथा सास-ससुर ने कल्याणदास को बहुत समझाया, पर कल्याणदास अड़िग रहे। किसी से बहस किए बिना ही मामा के साथ वे लग्न-मंडप से ही त्यागी होने के लिए निकल पड़े। श्रीजी के आदेशानुसार जेतलपुर में रामदास स्वामी से मिलकर पैदल ही सीधे भुज आ पहुँचे।

श्रीहरि ने गाँव की सीमा पर सभी का स्वागत किया। सभी नए परमहंसों को गले लगाकर बहुत प्रसन्न हुए। फिर पूछा कि 'इस कल्याणदास का नाम पत्र में नहीं था, यह क्यों आया है ?'

कल्याणदास ने उत्तर दिया, 'हे महाराज, आपने पत्र में 'आदि भक्तजन' लिखा था, क्या मैं 'आदि' में नहीं गिना जाता ? उपरांत आपने लिखा था कि सांख्ययोगी, कर्मयोगी सभी हरिभक्त को संसार छोड़कर निकलना है, तभी हमें प्रसन्नता होगी, इसलिए जगत के नाशवंत सुख को छोड़कर मैं आपको प्रसन्न करने आया हूँ।'

इस नौजवान का वैराग्य देखकर श्रीहरि ने उनको तुरंत साधु की दीक्षा दी और कहा, 'दूसरे किसी से न हो सके ऐसा अद्‌भुत कार्य तुमने किया है, अतः तुम्हारा नाम 'अद्‌भुतानंद' रखा जाता है।'

फिर श्रीहरि ने उन्हें बहुत आशीर्वाद दिए। श्रीजी की आज्ञा होते ही वे अपने गाँव कडु तथा अपने ससुराल मेथाण से भिक्षा माँगकर ले आए। इस प्रकार कठिन कसौटी को पार किया।

उनके इस अद्‌भुत कार्य से उनकी धर्मपत्नी भी बहुत प्रभावित हुईं। वे भी ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करती हुई आजीवन प्रभुभक्ति में ही लीन रहीं।

थोड़े अरसे के बाद उनके भाई वजुभाई उन्हें घर वापस लाने के आशय से वरताल पहुँचे। अद्‌भुतानंद स्वामी ने उन्हें पाँच दिन तक वहीं

रोककर वैराग्य की ऐसी बातें कही कि उन्हें भी वैराग्य उदय हो गया, और वहीं दीक्षा ले ली। उनका नाम निष्कामानंद स्वामी रखा गया।

'बहुत दिन हो गए अभी तक वजुभाई क्यो नहीं लौटे, चलो मैं वरताल जाकर दर्शन भी कर आऊँगा व उनको साथ ले आऊँगा।' ऐसा सोचकर तीसरे भाई विठ्ठलभाई वरताल पहुँचे। उनका कोमल अन्त:करण भी स्वामी की बातों से भीग गया। वे भी संसार-सुख को क्षणिक समझकर साधु बन गए। उनका नाम था, चैतन्यानंद स्वामी (छोटे)। चौथे भाई कुबेरदास उदास रहने लगे। परंतु समग्र परिवार की जिम्मेदारी उनके सर पर होने से श्रीहरि ने उन्हें गृहस्थाश्रम में रहने की ही सलाह दी।

अद्‌भुतानंद स्वामी ने कच्छ-गुजरात के अनेक गाँवों में घूमकर बहुत सत्संग प्रवर्तन किया। उस समय जब कि धोलेरा मंदिर की महंताई लेने को कोई राजी नहीं था, अद्‌भुतानंद स्वामी महाराज की आज्ञा शिरोधार्य करके धोलेरा मंदिर के महंत बने। भाल देश के वारणा गाँव के हरिभक्तों की दुर्बल परिस्थिति को देखकर, अद्‌भुतानंद स्वामी ने वहाँ चमत्कारिक संकटभंजन हनुमानजी की मूर्ति प्रतिष्ठित की थी।

संवत् 1939 (सन् 1917) में गुरुहरि शास्त्रीजी महाराज ने दीक्षा ली, उस समय सद्‌गुरु अद्‌भुतानंद स्वामी भी उपस्थित थे। शास्त्रीजी महाराज ने वरताल में उनकी सेवा का लाभ भी लिया था।

5. साधु तथा पार्षद

साधु

स्वामिनारायण भगवान ने मुमुक्षु हरिभक्तों को साधु-दीक्षा के अधिकारी माना है। अष्ट प्रकार से स्त्री-धन के त्यागी, ब्रह्मचर्यव्रतधारी स्वामिनारायण संप्रदाय के साधुओं ने एक अनोखी प्रतिभा खड़ी की है। जगत के तमाम क्लेशों का मूल स्त्री और धन में ही होने के कारण श्रीहरि ने स्त्री-धन के त्यागी संतों को समाज के बीच रखते हुए एक निराली रीत चलाई है।

श्रीहरि त्यागीवृंद को सावधान करते हुए कहते हैं, 'त्यागी होकर यदि अपने पास कौड़ी जितना धन भी रखते या रखवाते हों, तो दस हज़ार

गायों की हत्या का पाप लगेगा।'

हम जानते हैं कि भूतकाल में वशिष्ठ, विश्वामित्र, पराशर, सौभरि, च्यवन आदि ऋषियों को भी स्त्री व धन के कारण साधना व तपस्या में विघ्न हुए थे।

स्त्री का स्पर्श हो जाने पर त्यागी साधुओं को प्रायश्चित्त के रूप में स्नान करके निर्जल उपवास करना चाहिए। धन के स्पर्श होने पर धूल से हाथ धोकर पवित्र हुआ जा सकता है। यहाँ यही हेतु है कि साधुओं को स्त्री-धन के प्रति बिलकुल आसक्ति न रहे। साधुओं को दो-दो की जोड़ी में ही रहना-फिरना चाहिए। किसी कारणवश यदि अकेले रहना पड़े तो उपवास कर लेना चाहिए।

धर्मामृत ग्रंथ के अनुसार साधुओं को निष्काम, निर्लोभ, नि:स्नेह, निर्मान, नि:स्वाद इन पंचवर्तमान का तथा शिक्षापत्री के नियमों का पालन करना अत्यंत आवश्यक है। पंचवर्तमानयुक्त धर्ममर्यादा में रहकर अपनी आत्मा को ब्रह्मरूप मानकर श्रीहरि का अखंड भजन करनेवाला साधु आदर्शरूप है।

बिना सिले हुए भगवे वस्त्र-धोती, उपवस्त्र तथा सिर पर पगड़ी धारण करनेवाले स्वामिनारायणीय संत तुरंत ही पहचाने जा सकते हैं। भगवान स्वामिनारायण द्वारा बताई गई पंचवर्तमान की मर्यादा में रहकर साधु स्वयं भी शुद्ध जीवन जीते हैं और हरिभक्तों को भी धर्मोपदेश देकर धर्ममर्यादा में रखते हैं। साधु सत्संग के आधारस्तंभ हैं। इनके द्वारा भागवत धर्म का पोषण होता है। उनके गाँव-गाँव में होते विचरण द्वारा धर्म, भक्ति, ज्ञान, विवेक और प्रेम की सरिता बहती है, जिसमें स्नान करके भक्तजन पवित्र होते हैं।

भगवान स्वामिनारायण के समय में 500 नैष्ठिक व्रतधारी परमहंसों ने अनेक कष्ट सहन करते हुए गुजरात की प्रजा को वहम, व्यसन, कुरीति के जाल से प्रजा को मुक्त किया और सच्चा भक्तिमार्ग बताया। अपने इस कार्य में उन्होंने कभी अपनी देह की परवाह तक नहीं की। मान-अपमान में भी अपना कार्य अविरत रूप से गतिमान रखा। फलस्वरूप आज समाज में हमारे सामने सभ्य, शिक्षित व सुसंस्कृत असंख्य संत्सगी बाल-युवक तैयार हुआ है।

पार्षद

संप्रदाय के श्वेत वस्त्रधारी पार्षद त्यागीवृंद के ही मुमुक्षु भक्त हैं। पार्षदों को भी ब्रह्मचर्यपरायण रहना होता है। श्रीहरि के अंगरक्षक भगुजी, मिंयाजी, रतनजी आदि पार्षद थे। जाति-पाँति के भेद-भाव के बिना मिंयाजी को भी श्रीहरि ने अपनी सेवा में रखा था। पहले ये पार्षद सिले हुए वस्त्र पहन सकते थे। मंदिर के लेन-देन व व्यवहार कार्य हेतु स्त्रियों के साथ बातचीत कर सकते थे। मंदिर के धन से आवश्यक व्यवस्था करने की भी संमति थी। लेकिन स्त्री का स्पर्श व धन का संग्रह करना उनके लिए भी निषिद्ध था।

कालान्तर में ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज तथा योगीजी महाराज ने पार्षद पंक्ति के त्यागीवर्ग के नियमों में कुछ सुधार किए। बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था में उन्होंने श्वेत वस्त्रधारी पार्षदों को भी काषाय वस्त्रधारी साधुओं के समान ही नियम दिए। जैसे कि स्त्री-धन का अष्टप्रकार से त्याग, बिना जोड़ के अकेला रहना नहीं आदि। इस प्रकार पार्षद पंक्ति में भी सख्त नियम-अनुशासन देकर उन्होंने पार्षदों को भी संतों सा का गौरव प्रदान किया तथा उत्तम संस्कारों में पले मुमुक्षु-पार्षद भक्तों की भी महिमा बढ़ाई। ऐसे सद्‌गुणी पार्षद बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था में ही देखने को मिलते हैं।

संस्था में त्यागी होनेवाले मुमुक्षु को कड़ी कसौटी से पार उतरना होता है। पुख्त वयमर्यादा त्यागी होने के लिए अनिवार्य योग्यता है। एक साल तक उसे वरिष्ठ संतों के सांनिध्य में रहकर तालीम प्राप्त करनी पड़ती है और अयोग्य सिद्ध होने पर उसे दीक्षा प्रदान नहीं की जाती। जब तक प्रथम दीक्षा - पार्षद दीक्षा न दी गई हो, ऐसी तालीम अवस्था में मुमुक्षु को 'साधक' कहा जाता है। त्यागी होने के लिए इस प्रकार का प्रशिक्षण केन्द्र संस्था की अद्वितीय संकल्पना हैं। आज इस संस्था का सुशिक्षित तालीम बद्ध एवं युवा संत समाज में 800 से अधिक त्यागी संमिलित हैं। जो कि देश-विदेशों में अपना अनुभवपूर्ण मार्गदर्शन देते हुए समाज को अध्यात्म की ओर अग्रसर करते रहते हैं!

6. प्रभाती पद

(राग केदारो)

पद-1

ध्यान धर ध्यान धर, धर्मना पुत्रनुं, जे थकी सर्व संताप नासे;
कोटि रविचंद्रनी कांति झांखी करे, एवा तारा उर विषे नाथ भासे ॥ 1 ॥

शिर पर पुष्पनो मुगट सोहामणो, श्रवण पर पुष्पना गुच्छ शोभे;
पुष्पना हारनी पंक्ति शोभे गळे, नीरखतां भक्तनां मन लोभे ॥ 2 ॥

पचंरगी पुष्पनां कंकण कर विषे, बांये बाजुबंध पुष्प केरां;
चरणमां श्यामने नूपुर पुष्पनां, ललित त्रिभंगी शोभे घणेरां ॥ 3 ॥

अंगोअंग पुष्पनां आभरण पहेरीने, दास पर महेरनी दृष्टि करता;
कहे छे मुक्तानंद भज दृढ़ भावशुं, सुख तणा सिंधु सर्व कष्ट हरता ॥ 4 ॥

पद-2

प्रीत कर प्रीत कर प्रगट परब्रह्म शुं, परहर अवर पंपाळ प्राणी;
परोक्षथी भव तणो पार आवे नहि, वेदवेदांत कहे सत्य वाणी ॥ 1 ॥

कल्पतरु सर्वना संकल्प सत्य करे, पासे जई प्रीतशुं सेवे ज्यारे;
तेम जे प्रगट पुरुषोत्तम प्रीछशे, थाशे हरिजन तत्काळ त्यारे ॥ 2 ॥

प्रगटने भजी भजी पार पाम्या घणा, गीध गुणिका कपिवृंद कोटि;
व्रज तणी नार व्यभिचार भावे तरी, प्रगट उपासना सौथी मोटी ॥ 3 ॥

स्वामिनारायण नामने परहरी, जार भजनार सर्वे ख्वार थाशे;
कहे छे मुक्तानंद प्रगट भज प्रणिया, अघतणा ओघ तत्काळ जाशे ॥ 4 ॥

7. हठ, मान व ईर्ष्या

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है कि हठ, मान व ईर्ष्या ये तीन दोष हमें सत्संग से गिरा देते हैं। जिसे सत्संग में आगे बढ़ना हो, उसे अपने इष्टदेव या भगवान के भक्तों के प्रति हठ, मान, ईर्ष्या नहीं रखनी चाहिए, इतना ही नहीं भगवान के भक्त को तो अपनी इच्छाओं को भी त्यागकर अहंशून्यभाव से आचरण करने की आज्ञा श्रीहरि ने दी है। इनमें से एक दोष भी यदि हमारे जीवन में आ जाता है, तो भी सत्संग से गिरा देने में उसका बहुत बड़ा योगदान रहता है! अतः हम इस पर कुछ ऐतिहासिक प्रसंग देखते हैं।

मछियाव की बुआजी

मछियाव (जिला, अहमदाबाद, गुजरात) के राजवी प्रतापसिंहजी की पत्नी सुजानकुंवरबा सत्संग समुदाय में 'बुआजी' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। वे श्रीजीमहाराज की भक्त थीं। गाँव में उनकी बड़ी इज्जत थी। श्रीहरि के अनन्य सेवक मूलजी ब्रह्मचारी भी मछियाव के थे। निज भक्तों को सुख देने के लिए श्रीहरि बत्तीस बार मछियाव पधारे थे।

एक बार बुआजी को अपनी पुत्रवधू के साथ कुछ अनबन हो गई। बुआजी ने गुस्से में आकर बहू को उसके मायके भेज दिया। सारे संबंध तोड़ दिए। बहू के माता-पिता भी सत्संगी थे। उन्होंने महाराज से बिनती की तथा बुआजी को समझाने के लिए प्रार्थना की। दयानिधान श्रीहरि ने कहा, 'चलो, हम मछियाव जाकर समझौता करवा देते हैं।'

श्रीहरि दो सौ संतों तथा अन्य हरिभक्तों के साथ गाँव मेलणा पधारे, जहाँ बहू रहती थीं। उन्होंने बहू से पूछा, 'हम जैसा कहे, वैसा करोगी ?'

बहू ने उत्तर दिया, 'हे महाराज ! आपकी और मेरी सास की आज्ञा से तो मैं भरे बाजार बिक जाने के लिए भी तैयार हूँ। आप लोगों की प्रसन्नता में ही मेरी खुशी है।'

यह सुनकर श्रीहरि अति प्रसन्न हुए। आखिर सब मछियाव पहुँचे।

बुआजी ने धूमधाम से उनका स्वागत किया। संतों-भक्तों के लिए बढ़िया भोजन तैयार करवाया। इस समय लालजी की पूजा हो रही थी। बुआजी सामने ही बैठी थीं। श्रीहरि घोड़ी से उतरे। बुआजी आदर सहित उन्हें घर में ले गई। बड़े भाव से श्रीहरि का पूजन करके आरती की, तब उन्होंने कहा, 'बुआजी, हम जैसा कहें, वैसा करोगी?'

बुआजी तुरंत बोली, 'आप आज्ञा तो करें महाराज !'

श्रीहरि ने कहा, 'तो फिर पुत्रवधू को प्रेमपूर्वक यहाँ बुला लो और यहीं रखों।'

यह सुनते ही बुआजी तुरंत बोल उठी, 'लगता है मेलणावालों ने आपके कान भर दिए हैं। परन्तु मुझसे ऐसा नहीं होगा।'

पुनः श्रीहरि ने पूछा, 'आप हमें कैसा समझतीं हैं?'

'महाराज! आप तो सर्वोपरि तथा सर्व अवतारों के अवतारी हो। हमारे इष्टदेव हो। पर इस सास-बहू के मामले को आप नहीं समझोगे। अतः कृपया आप बीच में न आईए !' बुआजी ने स्पष्ट कह दिया।

श्रीहरि को यह हठ अच्छी नहीं लगी। अतः आखिरी फरमान देते हुए उन्होंने कहा, 'यदि आप बहू को नहीं बुलाती हों, तो कोई भी संत-हरिभक्त भोजन नहीं करेगा। हम भी बिना भोजन के ही चले जाएँगे।'

बुआजी ने ज़िद्द नहीं छोड़ी। वे बोलीं, 'महाराज ! आप तो मालिक हैं। जो चाहे कीजिए, परंतु यह बात तो असंभव है।'

श्रीहरि उनका हठाग्रह देखकर नाराज हो गए। वे 'जय सच्चिदानंद... चलिए महापुरुषों...' कहकर चलने लगे। साथ ही साथ सभी संत-भक्त भी बिना भोजन किए ही लौट पड़े। सभी ने दूसरे गाँव जाकर भोजन किया।

इस घटना के बाद श्रीहरि कभी मछियाव नहीं पधारे। आज भी कोई संत-हरिभक्त मछियाव नहीं जाता है। बुआजी सत्संगी होते हुए भी अपनी ज़िद्द नहीं छोड़ सकीं और श्रीहरि को नाराज किया। इस प्रसंग से हमें यह प्रेरणा मिलती है कि अपने इष्टदेव का कैसा भी कठोर वचन क्यों न हो, हमारे मन को मोड़कर और इच्छाओं को दबाकर भी उस वचन का पालन करना चाहिए।

अलैया खाचर

गढ़डा से पाँच मील की दूरी पर झींझावदर गाँव है। यहाँ के ठाकुर अलैया खाचर स्वामिनारायण भगवान के अनन्य भक्त थे। उन्होंने निष्ठापूर्वक सेवा करके श्रीहरि को प्रसन्न किया था। उन्होंने भी अलैया को कुछ ऐश्वर्य-शक्ति प्रदान की थी। इस शक्ति के द्वारा वे लोगों को समाधि में ले जाते, और वैकुंठ, गोलोक, ब्रह्मपुर आदि धाम के दर्शन करवाते थे। अपनी छड़ी का एक सिरे का स्पर्श होते ही लोगों को समाधि होती और दूसरे सिरे का स्पर्श करते ही जग जाते और सत्संगी भी बन जाते! इस प्रकार अलैया खाचर ने दो हज़ार व्यक्तियों को श्रीहरि के अनुयायी बनाये।

एकबार गढ़पुर में श्रीहरि के सान्निध्य में सभा चल रही थी। प्रश्न था कि दादा खाचर, सुरा खाचर, नाजा जोगिया, सोमला खाचर, अलैया खाचर आदि हरिभक्तों में श्रेष्ठ कौन है? इस प्रश्न का उत्तर श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी से माँगा। भोले स्वभाव के मुक्तमुनि ने विचार करके दादाखाचर का नाम सर्वश्रेष्ठ हरिभक्त के रूप में दिया। अलैया खाचर को लगा कि मेरा नाम सर्वश्रेष्ठ हरिभक्त में आना चाहिए था, पर लगता है दूसरे क्रम पर तो मेरा ही नाम होगा। परंतु मुक्तानंद स्वामी ने दूसरे क्रम पर सुरा खाचर का नाम दिया। तृतीय क्रम में सोमला खाचर का नाम देकर मुक्तानंदजी ने तो हद ही कर दी। अलैया खाचर के मन को मानभंग होने का तीव्र आघात पहुँचा। क्रोध से उनकी आँखें लाल हो गईं। आवेश में आकर उन्होंने अपनी तलवार निकाली। तभी महाराज एकदम बोल उठे, 'मुक्तानंद स्वामी ! आप तो कुछ जानते ही नहीं! अलैया तो अलैया, दूसरा चाहे कैसा भी भक्त हो, परंतु ऐसे निष्कामी वर्तमान को पालनेवाले अलैया जैसे भक्त कोई नहीं है।'

महाराज की बात सुनते ही अलैया खाचर ने तलवार वापस म्यान कर दी, और खुश हो गए। परंतु श्रीजीमहाराज ने इसी प्रसंग पर वच. लो. 17 में कहा है, 'पंचविषय का अभाव न होने पर... कुछ लोग मुक्तानंद स्वामी जैसों का मस्तक भी काटने जैसा द्रोह कर देता है।'

एक बार श्रीहरि भक्तमंडल के साथ उन्मत्त गंगा में स्नान कर रहे थे। सब पानी में खेल का मजा ले रहे थे। उन्होंने गोता लगाकर अलैया को उछाला और पानी में फेंका। अलैया की बड़ी तोंद पर लपेटे हुए वस्त्र की गाँठ श्रीहरि ने अपने पैर के अँगूठे से खोल दी, और वस्त्र लेकर पानी के अंदर से ही दूर चले गए। अलैया खुले बदन हो गए। उन्हें देखकर सभी हँसने लगे। अलैया को इतना अपमान लगा कि वे कुछ बोल भी नहीं पाए। श्रीहरि की इस अलौकिक लीला में आनंद लेने की बजाए उसे मानभंग लगा और सोचने लगे कि उन्होंने मुझे पूर्व निर्धारित षडयंत्र का भाग बनाया है। वे क्रोधावेश में अनाप-शनाप बोलने लगे, और उसी समय श्रीहरि को छोड़कर चले गए। उसके बाद तो वे भक्तों के कान भरने लगे, 'गढ़डा मत जाओ। वहाँ कोई भगवान है ही नहीं ! सिर्फ एक पुरबिया ब्राह्मण रहता है।'

फिर वर्षों तक वे स्वामिनारायण भगवान के दर्शन के लिए नहीं आए, किन्तु जब उन्हें श्रीहरि के स्वधामगमन का समाचार मिला तो बहुत पश्चात्ताप हुआ, 'अरेरे ! मेरे जैसा कोई अभागा नहीं है। मान छोड़कर सेवा करने के बजाय, मैं एँठ में रहा। जिसे प्रसन्न करने के लिए मैंने ब्रह्मचर्य का पालन किया, सेवा की, उस पर पानी फेर दिया।' इस तरह बहुत शोक हुआ। उन्हें श्रीहरि के साथ बिताए गए बड़े-बड़े उत्सवों की याद ताज़ा होने लगी। वे रो पड़े। गोपालानंद स्वामी तथा अन्य वरिष्ठ संतों के पास जाकर दीनतापूर्वक क्षमायाचना की और पुनः सत्संग में लौटे।

अलैया खाचर के प्रसंग को आँखों के सामने रखते हुए हमें निश्चय कर लेना चाहिए कि सभी संत-हरिभक्तों को भगवान तथा भगवान के भक्त के साथ अहंकार छोड़ कर वर्तन करे।

जीवा खाचर

गढ़पुर (जिला भावनगर, गुजरात) के ठाकुर दादाखाचर के पिताश्री एभल खाचर तथा जीवा खाचर दोनों सगे भाई थे। गढ़डा की जागीरदारी में दोनों का ही समान हिस्सा था। श्रीहरि जब गढ़डा पधारे थे, तब शुरुआत के छह वर्ष जीवा खाचर के दरबारभुवन में रहते थे। वहाँ उन्होंने अनेक

लीलाएँ की थीं, जिसका वर्णन आज भी हमें ग्रन्थों से प्राप्त होता है। साथ ही जीवा खाचर की भक्तिनिष्ठा का दर्शन भी होता हैं।

एक बार गढ़पुर में मूसलाधार वर्षा हुई। चारों ओर पानी ही पानी बह रहा था। उस समय श्रीजीमहाराज का निवास जीवा खाचर के दरबार भुवन में था। गाँव में कई मकान धराशायी हो गए थे। पानी बंद होने का नाम ही नहीं ले रहा था। प्रात:काल श्रीहरि को शौच के लिए जाना था, परंतु ऐसी विकट स्थिति में जीवा खाचर ने समयसूचकता दर्शाते हुए श्रीहरि को अपने घर के रसोईघर के चूल्हे पर शौच की व्यवस्था सूचित की। इतना ही नहीं एक बार वर्षा के कारण सभी लकड़ियाँ भीग चुकी थीं, तो जीवा खाचर ने अपने कीमती पलंग को तोड़ दिया और उसके काष्ठ जलाकर श्रीहरि के तापने की व्यवस्था की। उसकी ऐसी भक्ति से वे अत्यंत प्रसन्न हुए।

एक बार श्रीहरि गन्ना खा रहे थे, तभी उनकी उँगली में फाँस लग गई। रक्त निकलने लगा। जीवा खाचर ने न आव देखा न ताव, अपनी किमती पगड़ी फाड़कर श्रीहरि की उँगली पर पट्टी बाँध दी।

एक बार कथा करते हुए श्रीहरि को थूकना था, वे उठने को ही थे कि जीवा खाचर ने अपनी पगड़ी उतारकर श्रीहरि को उसमें थूकने के लिए प्रार्थना की! श्रीहरि की ऐसी दुर्लभ सेवा उन्होंने भक्तिभाव-पूर्वक की थी। लेकिन कुछ समय के बाद श्रीहरि दादाखाचर की भक्ति के वश होकर उनके वहाँ रहने गए। दिनों-दिन श्रीहरि का दादाखाचर के प्रति बढ़ता लगाव जीवा खाचर से सहन नहीं हुआ। अब उन्हें दादाखाचर से ईर्ष्याभाव होने लगा।

श्रीहरि की यह हार्दिक इच्छा थी कि गढ़डा में घेला नदी के तट पर स्थित टीला पर एक मंदिर बनाया जाए। इस जमीन पर जीवा खाचर व दादा खाचर दोनों का समान अधिकार था। दादाखाचर ने तो श्रीहरि की मर्ज़ी देखते ही दस्तावेज में अपने हस्ताक्षर कर दिए थे। अब श्रीहरि ने जीवा खाचर से इस जमीन के विषय में बात कही। प्रारम्भ में तो जीवा खाचर ने कहा, 'महाराज ! यह गढ़ तो हमारे काम का है, अत: मंदिर कहीं दूसरी जगह बनाइए।'

इस प्रकार समर्पण से जीवा खाचर किनारा कर गए।

एकबार जीवा खाचर की ईर्ष्या ने चरम सीमा पार कर ली ! उन्होंने श्रीहरि की ही हत्या करने की योजना सोच ली ! राम खाचर नामक एक काठी राजपूत को थोड़ी जमीन व कुछ रुपये देने की घूस देकर उसे रात को श्रीहरि की हत्या करने के लिए भेजा। राम खाचर, श्रीहरि जिस शौचालय में नित्यक्रमानुसार जाते थे, उसी में नंगी तलवार लेकर छिप गया। समय होने पर रोज तो स्वयं ही हाथ में फानस लेकर चले जाते पर आज उन्होंने भगुजी से कहा, 'आप यह लालटेन लेकर शौचालय में रख आइए।' भगुजी कुछ समझे नहीं। तब महाराज ने कहा, 'वहाँ कुछ आश्चर्य है।' अत: भगुजी सावधानीपूर्वक वहाँ पहुँचे, चुपके से शौचालय का दरवाजा खोला। तभी राम खाचर को नंगी तलवार लेकर खड़ा पाया। भगुजी ने तुरंत ही श्रीहरि के वचनों का रहस्य पा लिया। उन्होंने पलभर में राम को धर दबोचा। उसे महाराज के पास ले गए। महाराज ने कहा, 'इसका क्या कसूर है? अपराधी तो कोई और है!' राम ने कहा, 'जी महाराज, जीवा खाचर के कहने से मैंने यह किया है, मैं तो निर्दोष हूँ।' श्रीहरि ने क्षमा देते हुए कहा, 'छोड़ दो इसे।' भगुजी ने राम को कालामुँह लेकर वहाँ से भगा दिया और महाराज ने जीवा खाचर को एक शब्द की भी उलाहना नहीं दी।

जब जीवा खाचर का अंत समय आया तो उनकी बहन अमूलाबाई श्रीहरि के पास आकर बोलीं, 'भाई के गुनाहों को भूलाकर आप कृपया उन्हें आपके धाम के अधिकारी बनाएँ।'

श्रीहरि ने हँसते हुए कहा, 'हमारा तो प्रतिशोध लेने का स्वभाव ही नहीं है। यदि हम सिर्फ़ जीवों के गुनाहों की ओर देखते रहे तो किसी का भी मोक्ष न होता, परंतु जीवा खाचर ने सेवा की है, अत: हम उसे अपने धाम में अवश्य ले जाएँगे।'

श्रीहरि की करुणा देखकर सब आश्चर्य चकित हो गए ! यह प्रसंग हमें यही प्रेरणा देता है कि हमें भी इष्टदेव की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए भगवान के भक्त के साथ ईर्ष्या छोड़कर सरलभाव से आचरण करना चाहिए।

8. संप्रदाय के तीर्थस्थान

भारत के तीर्थस्थान हमारे इतिहास के जीवित प्रतिनिधि हैं। आज भी इन तीर्थस्थानों से लाखों यात्रिकों को आध्यात्मिक प्रेरणाएँ मिल रही है। **'तरति पापादिकं यस्मात्'** – जिसके द्वारा मनुष्य पापादि से मुक्त होता है, उसे तीर्थ कहते हैं। साधारणतः ऐसी नदी, सरोवर या भूमि को तीर्थ शब्द से पहचाना जाता है कि जहाँ दिव्य शक्ति का निवास है, तथा जिसके संसर्ग से या दर्शन, स्नान करने से मनुष्य के जाने-अनजाने में हुए पाप नष्ट हो जाते हैं।

तीर्थों का वातावरण पवित्र होता है। वहाँ जाते ही हृदय में शांति व पवित्रता का अनुभव होता है। तीर्थों का ऐसा प्रभाव है कि वहाँ कठोर तप हृदयवाले भी निर्मल और पवित्र हो जाते हैं।

तीर्थों के तीन प्रकार हैं :

(1) नित्य तीर्थ : सृष्टि के प्रारंभ से ही जिस भूमि पर दिव्य, पावनकारी गुण हैं वह नित्यतीर्थ कहलाता है। उदाहरणार्थ कैलास, मान-सरोवर, गंगा, यमुना, नर्मदा आदि। ये तमाम स्थान स्थायी तीर्थ कहलाते हैं।

(2) भगवदीय तीर्थ : जहाँ भगवान के अवतार हुए हों, जहाँ उन्होंने लीलाएँ की हों, जहाँ भक्तों को दर्शन दिए हों, वह भगवदीय तीर्थ कहलाते हैं। भगवान तो नित्य, दिव्य, अप्राकृत और चिन्मय हैं। जहाँ-जहाँ उनके चरण पड़े, वह भूमि दिव्य हुई। प्रभु के चरणों का ऐसा अप्रतिम प्रभाव है।

छपैया (उत्तर प्रदेश) : श्रीहरि की यह जन्मभूमि है। यहाँ उन्होंने अनेक बाललीलाएँ की थीं। आज उनका जन्मस्थल सुरक्षित है। तथा विशाल मन्दिर का निर्माण भी किया गया है।

अयोध्या (उत्तर प्रदेश) : श्रीहरि का बचपन यहाँ बीता था। यहाँ उन्होंने अनेक आश्चर्य अपने मित्रों-स्नेहियों को बताए थे।

भगवान स्वामिनारायण भले ही उत्तर प्रदेश में प्रकट हुए, किन्तु गुजरात उनका कार्यक्षेत्र रहा, फलतः गुजरात में भी उनके संबंध से प्राप्त अनेक शहर एवं गाँव आज बड़े तीर्थस्थान के रूप में प्रसिद्ध है। गाँव गढ़डा तथा गाँव के बाहर लक्ष्मीवाडी, राधाबावड़ी आदि तथा वरताल, अहमदाबाद,

डभाण, जेतलपुर, धोलेरा, मूली, भूज, जूनागढ़ तथा सौराष्ट्र, गुजरात व कच्छ के अनेक स्थान श्रीहरि के संबंध से तीर्थी भूत बने हुए हैं।

(3) संत तीर्थ : जीवनमुक्त, देहातीत, परम भागवत संत का शरीर पंचभूत का ही होता है, किन्तु वास्तव में वे संत दिव्य हैं। गुणातीत संत और परमात्मा का अखंड सम्बन्ध है। अतः इनके संसर्ग में आनेवाली भूमि तीर्थ बन जाती हैं। ऐसे संतों की साधनाभूमि, जन्मभूमि, निर्वाणभूमि आदि विशेषरूप से पवित्र मानी गई हैं। इन साधु-संतों के अवतरण से, उनके विचरण से, एवं उनके ऐश्वर्य से तीर्थीभूत भारत की भूमि 'पुण्यभूमि' कहलाती है और उनसे संबंधित स्थान 'तीर्थस्थान' कहलाते हैं।

धर्मराज युधिष्ठिर को नारदजी कहते हैं :

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूता स्वयं विभोः।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता ॥ (भागवत : 1-13-10)

ऐसे संतों के संबंध से तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। अपने सम्बन्ध मात्र से संत समस्त पापों को हर लेते हैं। क्योंकि उनके हृदय में श्रीहरि का अखंड निवास है। ऐसे संत जंगमतीर्थ कहे जाते हैं।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी, ब्रह्मस्वरूप प्रागजी भक्त, ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज, एवं ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज की जन्मभूमि, कर्मभूमि तथा देहत्याग स्थल - भादरा, महुवा, महेलाव, धारी तथा बोचासण, सारंगपुर, गोंडल, अटलादरा, गढ़डा, अहमदाबाद, मुंबई, सांकरी आदि स्थान तथा अन्य कई स्थान इन भगवत्स्वरूप संत के विचरण के कारण तीर्थ बने हैं। प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज की जन्मभूमि तथा कर्मभूमि चाणसद (जिला, बड़ौदा) तीर्थरूप है। संप्रदाय के असंख्य अनुयायी इन प्राचीन व अर्वाचीन तीर्थों के दर्शन से शांति एवं धन्यता का अनुभव करते हैं।

9. श्री धार्मिकस्तोत्रम्

श्रीवासुदेव-विमलामृतधामवासं
नारायणं नरकतारण-नामधेयम् ।
श्यामं सितं द्विभूजमेव चतुर्भुजं च
त्वां भक्तिधर्मतनयं शरणं प्रपद्ये ॥1॥

दिव्य, विशुद्ध वासुदेव के रूप में अक्षरधाम में निवास करनेवाले, नरक से बचानेवाले, नारायण जिनका नाम हैं, श्याम तथा श्वेत वर्णवाले, दो भुजाओं तथा कभी कभी चार भुजाओं में सुशोभित भक्ति व धर्म के पुत्र ! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (1)

शिक्षार्थमत्र निजभक्तिमतां नराणाम्
एकान्त-धर्ममखिलं परिशीलयन्तम् ।
अष्टाङ्गयोगकलनाश्च महाव्रतानि
त्वां भक्तिधर्मतनयं शरणं प्रपद्ये ॥ 2 ॥

अपने भक्तजनों को संपूर्ण एकांतिक धर्म, आष्टांगयोग की सकल कला, अहिंसा, ब्रह्मचर्यादि महाव्रतों को अपने आचरण द्वारा सिखानेवाले भक्ति व धर्म के पुत्र ! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (2)

श्वासेनसाकमनुलोमविलोमवृत्या
स्वान्तर्बहिश्चभगवत्युरुधा निजस्य ।
पूरे गतागतजलाम्बुधिनोपमेयं
त्वां भक्तिधर्मतनयं शरणं प्रपद्ये ॥ 3 ॥

श्वासोच्छ्वास सहित जिनके अन्त:करण में तथा प्रत्यक्ष अपनी वृत्ति अनुलोम-प्रतिलोम होती है, जैसे ज्वार-भाटे का चढ़ता-उतरता जल जिसका है, ऐसे समुद्र की उपमा देने योग्य भक्ति व धर्म के पुत्र ! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (3)

बाह्यान्तरिन्द्रियगणस्वसनाधिदैव-
वृत्युभवस्थितिलयानपि जायमानान् ।
स्थित्वा ततः स्वमहसापृथगीक्षमाणं
त्वां भक्तिधर्मनयं शरणं प्रपद्ये ॥ 4 ॥

बाह्य व आंतरिक इन्द्रियों का समूह को तथा उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय करनेवाले प्राण-इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं को सदा स्वस्वरूप में लीन करनेवाले, उपरांत स्वप्रताप से अनासक्त रहनेवाले तमाम को साक्षात् देखनेवाले भक्ति व धर्म के पुत्र ! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (4)

मायामयाकृतितमोऽशुभवासनानां
कर्तुं निषेधमुरुधा भगवत्स्वरूपे ।

निर्बीज-साङ्ख्यमतयोगगयुक्तिभाजं
त्वां भक्तिधर्मतनयं शरणं प्रपद्ये ॥ 5 ॥

भगवान के स्वरूप में मायिक आकृति, अज्ञान व अशुभ दुर्गुणों का पूरी तरह निषेध करने के लिए जिसने निर्बीज सांख्य व योग के मत का युक्ति सहित खंडन किया है ऐसे भक्ति व धर्म के पुत्र ! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (5)

दिव्याकृतित्वसुमहस्त्वसुवासनानां
सम्यग्विधिं प्रथयितुं च पतौ रमायाः।
सालम्बसाङ्ख्यपथयोगसु युक्तिभाजं
त्वां भक्तिधर्मतनयं शरणं प्रपद्ये ॥ 6 ॥

रमापति भगवान के दिव्य आकृति का ज्ञान, प्रौढ प्रताप तथा सत्य संकल्पादि गुणों के लिए सत्य स्वरूप, सांख्ययोग के रहस्यों का ज्ञान देनेवाले भक्ति व धर्म के पुत्र ! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (6)

कामार्त-तस्कर-नट-व्यसनिद्विषन्तः
स्वस्वार्थसिद्धिमिव चेतसि नित्यमेव ।
नारायणं परमयैव मुदा स्मरन्तं
त्वां भक्तिधर्मतनयं शरणं प्रपद्ये ॥ 7 ॥

कामी, चोर, नट, व्यसनी तथा द्वेषीजन जिस प्रकार अपने निर्धारित कार्य में एकचित्त रहते हैं अर्थात् उसीका अखंड चिंतवन करते हैं, उसी प्रकार 'नारायण' का प्रेमपूर्वक अखंड स्मरण करनेवाले श्री भक्ति तथा धर्म के पुत्र ! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (7)

साध्वीचकोरशलभास्तिमिकालकण्ठ-
कोका निजेष्टविषयेषु यथैव लग्नाः।
मूर्तौ तथा भगवतोऽत्र मुदातिलग्नं
त्वां भक्तिधर्मतनयं शरणं प्रपद्ये ॥ 8 ॥

साध्वी स्त्री, चकोर पक्षी, पतंग, मछली, मोर एवं चक्रवाक पक्षी अपने-अपने इष्ट के साथ जिस प्रकार संलग्न रहते हैं, उसी प्रकार भगवान के स्वरूप में प्रसन्नतापूर्वक संलग्न रहनेवाले भक्ति व धर्म के पुत्र ! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (8)

स्नेहातुरस्त्वथ भयातुर आमयावी
यद्वत्क्षुधातुरजनश्च विहाय मानम् ।
दैन्यं भजेयुरिह सत्सु तथा चरन्तं
त्वां भक्तिधर्मतनयं शरणं प्रपद्ये ॥ 9 ॥

स्नेहातुर, भयातुर, रोगी तथा भूख से पीड़ित व्यक्ति जिस प्रकार स्वमान का त्याग करके दीनतापूर्वक अनुयय-विनय करते हैं, ठीक उसी प्रकार एकांतिक संतों के समक्ष स्वमान का त्याग करके परब्रह्म के स्वरूप में अखंड रहनेवाले भक्ति व धर्म के पुत्र! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (9)

धर्मस्थितैरुपगतैर्बृहता निजैक्यं
सेव्यो हरिः सितमहः स्थितदिव्यमूर्तिः ।
शब्दाद्यरागिभिरिति स्वमतं वदन्तं
त्वां भक्तिधर्मतनयं शरणं प्रपद्ये ॥ 10 ॥

सभी धर्मिष्ठ जनों द्वारा स्वीकृत अक्षर के साथ ऐक्यभाव तथा पंचविषय से विरक्त भक्तजनों के लिए अक्षरधाम में स्थित दिव्यमूर्ति श्रीहरि ही एकमात्र सेव्य हैं, इस मत को दर्शानेवाले भक्ति व धर्म के पुत्र ! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (10)

सद्ग्रन्थ-नित्यपठन-श्रवणादिसक्तं
ब्राह्मीं च सत्सदसि शासतमत्र विद्याम् ।
संसारजाल-पतिताखिल-जीवबन्धो
त्वां भक्तिधर्मतनयं शरणं प्रपद्ये ॥ 11 ॥

सद्ग्रंथों के पठन और श्रवण में जो आसक्त हैं, संतों की सभा में जो ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हैं तथा संसार के जाल में फँसे हुए जीवों के लिए जो तारणहार हैं ऐसे भक्ति व धर्म के पुत्र! मैं आपकी शरण में आ रहा हूँ। (11)

- श्री शतानंद मुनि

10. सोमला खाचर

गाँव बोटाद (जिला भावनगर, गुजरात) के दरबार सोमला खाचर के परम कृपापात्र भक्त थे।

सोमला खाचर भरे-पूरे सुखी परिवार से थे। उनके दो जवान

चरित्रवान सद्‌गुणी पुत्र थे। अच्छी खासी ज़मीन-जायदाद थी। न कोई चिंता थी न कोई दु:ख ! भजन-भक्ति में उनके दिन बीत रहे थे। पर प्रभु की लीला तो न्यारी ही होती है।

सोमला खाचर के दोनों जवान बेटे थोड़े दिन के अन्तराल में शरीर छोड़कर अक्षरवासी हो गए। ऐसी हृदय विदारक घटना के बाद सोमला खाचर की सामाजिक जिम्मेदारियाँ भी बढ़ गई। परंतु ज्ञान और सत्संग के द्वारा धैर्य धारण करते हुए उन्होंने पुत्रवियोग का शोक नहीं किया। अब उनका मन संसार से बिलकुल उठ गया था। अपनी सारी ज़मीन भगवान स्वामिनारायण के चरणों में समर्पित करके वे स्वयं भी उनकी सेवा के लिए पहुँच गए।

लंबा-चौड़ा कद, स्वरूपवान-भरा हुआ चेहरा और कमर पर झुलती सोने के हत्थेवाली तलवार सोमला खाचर की पहचान थी। परंतु श्रीहरि की निश्रा में आते ही सारे ठाट-बाट छोड़कर, मात्र श्वेत वस्त्र धारण करके पार्षद के रूप में उनकी सेवा करने लगे। बिना किसी भय वे शूरवीरतापूर्वक श्रीहरि की सेवा करते। चाहे कैसा भी कार्य क्यों न हो, सोमला खाचर उस कार्य को सिद्ध करके ही दम लेते ! ऐसे काठी राजपूतों को अपनी आज्ञा में रखना तथा उन्हें धर्म-नियम में रखना भी श्रीहरि का एक असाधारण ऐश्वर्य था!

सोमला खाचर की शूरवीरता अनेक प्रसंगों में देखने को मिलती है। खोखरा महेमदाबाद (अहमदाबाद शहर का पूर्वीय विभाग) में लोलंगर नामक एक भँगेड़ी बाबा ने बहुत आतंक मचाया हुआ था। उसके पास बहुत बड़ी शिष्यों की जमात थी। श्रीजीमहाराज तथा परमहंसों के शुद्ध उपदेश, व्यसनमुक्ति के नियम, अहिंसक यज्ञ यह सब उस बाबा से सहन नहीं होता, होता भी क्यों ? आखिर लोगों के सामने उसकी पोल जो खुलने लगी थी! अत: उन लोगों ने संतों को अनेक प्रकार से कष्ट देने शुरु किए। मार मारना, अपशब्द सुनना तो जैसे स्वामिनारायणीय संतों की शोभा बन चुकी थी!

खोखरा-महेमदाबाद गाँव में श्रीहरि अपने 500 परमहंसों के साथ पधारे। लोलंगर ने सोचा कि अब अच्छा मौका हाथ लगा है। वह अपनी टोली के साथ आ धमका ! श्रीहरि ने परिस्थिति की गंभीरता समझते ही

पहले ही 400 संतों को सुरत भेज दिया था। कांकरिया तालाब पर स्नान करने के पश्चात् धून-कीर्तन गाते हुए संतगण आ रहा था। इसी समय अचानक हथियारधारी बाबा आ पहुँचे। 'मार डालो.... काट डालो... एक भी बचने न पाए' कहकर नंगी तलवार लेकर संतों की ओर दौड़े। एक हरिभक्त को तलवार लगी, यह देखकर सोमला खाचर क्रोध के मारे काँपने लगे। वे और उनके साथी भी बाबाओं पर टूट पड़े। आमने-सामने तलवारें चलने लगी। शूरवीर काठी राजपूतों के आगे भला वे भँगेड़ी कहाँ तक ठहरते ?! एक... दो... तीन... चार... इस प्रकार बाबाओं के चार सरदारों को उन्होंने वहीं ढेर कर दिया। शेष भँगेड़ी साधु लहूलुहान स्थिति में वहाँ से ही दूम दबाकर भाग खड़े हुए। सोमला खाचर की वीरता ने बहुत बड़ी अराजकता से सभी को बचा लिया। सोमला खाचर को संत-हरिभक्तों के साथ ऐसा अपूर्व पक्ष तथा भक्तिभाव सहज सिद्ध था।

इस भक्तराज की प्रशंसा करते हुए श्रीहरि वचनामृत में कहते हैं कि 'हमारे स्वभाव को तो निरंतर हमारे साथ रहनेवाले मूलजी ब्रह्मचारी तथा सोमला खाचर आदि हरिजन ही यथार्थ रूप से जानते हैं।' (का. 6). 'सोमला खाचर की सदा एक-सी स्थिति रहती है।' (ग.अं. 24) सोमला खाचर श्रीजीमहाराज के सान्निध्य में रहनेवाले तथा उनकी रुचि जानकर महिमापूर्वक सेवा करनेवाले एक आदर्श भक्तराज थे।

11. जेतलपुर की गणिका

दोपहर का समय था। भगवान स्वामिनारायण गेहूँ से भरी बैलगाड़ी में बैठकर जेतलपुर (जिला : अहमदाबाद, गुजरात) की गली-गली में घूम रहे थे। जेतलपुर में होनेवाला अहिंसक यज्ञ निकट आ रहा था। असंख्य ब्राह्मणों को भोज देना था। अत: गेहूँ को पीसने के लिए घर-घर में डेढ़-दो मन गेहूँ देते जा रहे थे। सभी भाविक भक्तजन यह सेवा करने को तत्पर थे। भक्तों के अति आग्रह होने पर भी वे किसी को भी दो मन से अधिक गेहूँ नहीं देते थे। असंख्य जीवों का कल्याण जो करना था !

घूमते-घूमते श्रीहरि एक वेश्या के घर के पास आ पहुँचे। वह अपने झूले पर बैठी झूल रही थी। आवाज़ सुनकर वह बाहर आई। भगवान

स्वामिनारायण की मूर्ति के दर्शन करते ही उसकी वृत्ति प्रभु में एकाग्र हो गई। उसके भीतर एक अद्‌भुत आकर्षण जगा। अपने घर के पायदान पर ही खड़े-खड़े वह बोली, 'महाराज! आप यह गेहूँ सभी को पीसने के लिए देते हो?'

'हाँ।' भगवान ने कहा।

'बदले में क्या महेनताना देते हो ?'

'हम महेनताने में रुपये नहीं देते, परंतु इस सेवा के बदले में आशीर्वाद देते हैं।'

'यदि मैं भी पीसकर दूँ तो मुझे अपने आशीर्वाद दोगे ?'

'अवश्य देंगे, परंतु अपने हाथों से पीसती हो तो...'

'तो मुझे भी अपना हिस्सा दीजिए।'

श्रीहरि ने उसे भी दो मन गेहूँ पीसने के लिए दिए। गेहूँ लेकर वह घर में पहुँची। स्नान करके शुद्ध होकर, चक्की साफ की। दासियाँ कहने लगी, 'लाईये हमें दे दीजिए, आपने कभी ऐसा काम नहीं किया है, आप थक जाएँगी, हाथों पर छाले पड़ जाएँगे...'

परंतु उसे तो भगवान को प्रसन्न करने की लगन लग चुकी थी। उसने दृढ़ता से कहा, 'मैं अपने हाथों से ही पीसूँगी। प्रभु ने मुझे अपने हाथों से ही यह सेवा करने के लिए आज्ञा दी है।'

भगवान स्वामिनारायण का स्मरण करती हुई वह गणिका गेहूँ पीसने लगी। थोड़ी ही देर में थकान और पसीने से चूर हो गई, पर उसने एक ही रटना लगा रखी थी कि, 'कल सुबह तक मुझे यह सेवा पूर्ण करनी है।' वह ज्यों-ज्यों गेहूँ पीसती गई त्यों-त्यों उसकी भीतर की मलिनता दूर होती चली। शुभ विचारों की मानों फुहार उठने लगी, जैसे सत्यकाम जाबालि बिना शास्त्र पढ़े ही गुरु के आज्ञापालन से ज्ञानी हो गया था, उसी प्रकार यह गणिका आज श्रीजीमहाराज की कृपापात्र बन चुकी थी !

सारी रात बिना अन्न-जल लिए वह चक्की चलाती रही। सुबह तक सारे गेहूँ पीसे जा चुके थे। गणिका ने स्नान किया, बिना कुछ ठाटबाट के साधारण वस्त्र धारण करके वह आटे का टोकरा उठाकर पैदल भगवान के पास पहुँच गई।

भगवान स्वामिनारायण सुशोभित आसन पर बिराजमान थे। उनके

सम्मुख एक तरफ संतवृन्द तथा हरिभक्त बैठे थे। दूसरी ओर थोड़ी दूरी पर महिलाएँ बैठी थीं। अचानक इस वेश्या को सभा में आते देखकर सभी के मन उद्वेग और कुशंका से भर उठे।

वेश्या ने आटे का टोकरा प्रभु के चरणों में रख दिया, हाथ जोड़े और कहा, 'यह लीजिए प्रभु, अब तो मुझे आपके आशीर्वाद मिलेंगे कि नहीं ?'

सभाजन सोचने लगे, 'यह तो नीच कर्म करनेवाली वेश्या है, यह भला अपने हाथों से क्या पीसेगी, यकीनन इसने दासियों से पीसवाया होगा... यह कैसे आशीर्वाद की पात्र हो सकती है ?'

लेकिन प्रभु को उसके निर्मल अन्त:करण की झाँकी सभी को करवानी थी। उन्होंने पूछा, 'ये गेहूँ तुमने स्वयं पीसे हैं ?'

'जी हाँ महाराज !' वेश्या ने कहा।

'अपने हाथ दिखाओ तो।' उसने हथेलियाँ पसारी, सब देखते ही रह गए! उसके हाथ पर बड़े-बड़े छाले पड़ गए थे। सारी सभा अवाक् रह गई। भगवान स्वामिनारायण ने बड़ी प्रसन्नता से आशीर्वाद दिए, और कहा, 'जाओ, तुम्हारा मुक्तानंद स्वामी जैसा कल्याण होगा।'

एक वेश्या स्त्री का ऐसा भक्तिभाव तथा ऐसा जीवन परिवर्तन देखकर सभी विस्मित हो गए। सब श्रीजीमहाराज के अद्‌भुत प्रताप के विषय में सोचने लगे।

इस स्त्री के निमंत्रण पर महाराज सभी संतों-भक्तों के साथ उसके घर पधारे। यहाँ सभी को प्रीतिभोज दिया गया। भगवान के चरणों से उसका भवन पावन हो गया।

सच्चा भक्तिभाव प्रकट हो जाता है तब भगवान को प्रसन्न करने के लिए अन्य साधन करने की जरूरत नहीं रहती !

12. संप्रदाय के शास्त्र

शास्त्र क्या है ?

भगवान तथा गुणातीत संत की आज्ञा, उपदेश, चरित्र तथा सिद्धांतों का समन्वय जिस ग्रंथों से प्राप्त हो, उन ग्रंथों को शास्त्र कहे जाते हैं।

जो हमारी जानकारी में नहीं होती ऐसी साधना की यथार्थ रीति को

बतानेवाले ग्रंथ भी शास्त्र कहलाते हैं।

आश्रितों को जिनके द्वारा शासित किया जाता है, आध्यात्मिक ज्ञान समझाया जाता है, उन्हें शास्त्र कहे जाते हैं।

मनुष्य देह से क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इसका विवेक तथा धर्म का उपदेश देनेवाले ग्रन्थ ही शास्त्र हैं।

ऋषिमुनियों को अपनी साधना के बाद जो ज्ञान प्राप्त हुआ उसका नियमानुसार लेखन भी शास्त्र कहलाते हैं।

वेदव्यासजी द्वारा लिखित शास्त्रों को भगवान स्वामिनारायण ने भी मान्यता दी है तथा उनके प्रति अपना आदर व्यक्त किया है, फिर भी वचनामृत ग.म. 58 में कहते हैं : 'संप्रदाय की पुष्टि तो इस प्रकार होती है कि जिस संप्रदाय के जो इष्टदेव हों, उनका जिस प्रयोजन से पृथ्वी पर जन्म हुआ हो तथा जन्म-धारण करके उन्होंने जो-जो चरित्र किये हों और जो-जो आचरण किये हों उन आचरणों में धर्म भी सहजभाव से आ जाता है, और उन इष्टदेव की महिमा भी आ जाती है। इसलिए, अपने इष्टदेव के जन्म से लेकर देहोत्सर्ग पर्यन्त के चरित्रों के शास्त्र द्वारा सम्प्रदाय की पुष्टि होती हैं।' साथ ही महाराज ने संतों को अपने देह पर्यन्त संप्रदाय संबंधी शास्त्र की रचना करने का आदेश दिया था।

शिक्षापत्री में भगवान स्वामिनारायण ने सनातन हिन्दू धर्म के अनेक शास्त्रों से निम्नलिखित शास्त्रों को अपनी मान्यता प्रदान की है, 'चार वेद, व्याससूत्र, श्रीमद्भागवत पुराण तथा महाभारत में से श्री विष्णुसहस्रनाम, श्रीमद्भगवद्गीता व विदुर-नीति, स्कंदपुराण के विष्णुखंड से श्री वासुदेवमाहात्म्य और धर्मशास्त्र में याज्ञवल्कय ऋषि की स्मृति ये आठ सच्छास्त्र हमें प्रिय हैं।'

हमारे लिए हमारे संप्रदाय के शास्त्र ही मोक्षमार्ग में सहायक हैं और हमारे इष्टदेव की महिमा समझने में उपयोगी हैं। अतः यहाँ हम हमारे संप्रदाय के मुख्य ग्रंथों का परिचय प्राप्त करेंगे।

वचनामृत

वचनामृत श्रीजीमहाराज के श्रीमुख से निःसृत अमृतवाणी है। गुजराती

साहित्य क्षेत्र में यह ग्रन्थ इस भाषा का सर्व प्रथम गद्यग्रंथ है। भगवान स्वामिनारायण ने अपने भक्तजनों को समय-समय पर आध्यात्मिक रहस्य की बातें कही थीं। उनके उपदेश देने की कला बेमिसाल थी। शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को आम मनुष्य भी आसानी से समझ सकें उस प्रकार उन्होंने सरल व सुग्राह्य भाषा में दृष्टांतसहित उपदेश दिया है।

भगवान स्वामिनारायण के मार्गदर्शन में हज़ारों संत-हरिभक्त अध्यात्म साधना किया करते थे। किन्तु कभी स्वभाव-प्रकृति व देहभाव आदि के कारण उनको साधनामार्ग में समस्याएँ उपस्थित हुआ करती थी। उन समस्याओं को उन्होंने भगवान स्वामिनारायण के समक्ष प्रस्तुत की और श्रीहरि ने जो अनुभवपूर्ण मार्गदर्शन दिया उसको तत्कालीन वरिष्ठ संतों-योगीप्रवर गोपालानंद स्वामी, विद्यावारिधि नित्यानंद स्वामी, संत-शिरोमणि मुक्तानंद स्वामी तथा स्वामी शुकानंदजी ने तुरन्त लिख लिया, और जो संकलन किया, वही ग्रन्थ है : वचनामृत।

प्रत्येक वचनामृत के आरंभ में भगवान स्वामिनारायण की स्मृति हो इस हेतु से उनकी मूर्ति का वर्णन किया गया है। वे किस दिशा में मुख करके विराजमान हैं? उन्होंने कैसे वस्त्राभूषण धारण किए हैं? इसके साथ-साथ कौन सी तिथि तथा संवत् पर किस किसके सामने यह उपदेश दिया था, उसकी ऐतिहासिकता भी ग्रन्थ को अधिक मूल्यवान बनाती है। इस वर्णन के कारण भगवान की मूर्ति का स्मरण हो आता है तथा ग्रन्थ की प्रामाणिकता भी बनी रहती है।

वचनामृत में मुख्यत: स्वधर्म, आत्मज्ञान, वैराग्य, माहात्म्य युक्त भक्ति का निरूपण किया गया है। ब्रह्म-परब्रह्म के अनादि स्वरूपों की महिमा का निरूपण भी है। यह स्वयं भगवान की परावाणी है, अत: यह त्रिकालाबाधित है, सदा-सर्वदा जीवंत है, और आज भी हमारी समस्याओं का समाधान देती है। इस ग्रन्थ की प्रमाणभूतता बताते हुए स्वयं भगवान स्वामिनारायण कहते हैं, 'ये सभी बातें हमने प्रत्यक्ष देखकर की हैं।' (वच. ग.प्र. 64)।

'मुझे यह बात किसी प्रकार के दम्भ, मान के कारण अथवा अपना बड़प्पन को बढाने के लिये नहीं करनी है... यह हमारी अनुभूत बात है।' (वच. ग.म. 13, वच. ग.अं. 39)

जब इन वचनामृतों को पुस्तकरूप में संकलित किया गया तब लेखक-संपादकों ने इसे भगवान स्वामिनारायण को दिखाया था। महाराज अति प्रसन्न हुए थे और इसे अपनी ओर से पूर्ण मान्यता दें दी थी।

भगवान स्वामिनारायण ने जिस-जिस गाँव में प्रवचन दिए थे, उन गाँवों के नामों के अनुसार वचनामृत को प्रकरणों में विभाजित किया गया है। गढ़डा के वचनामृतों को प्रथम, मध्य तथा अंत्य प्रकरणों में संकलित किया गया है। गढ़डा प्रथम प्रकरण के 78, सारंगपुर के 18, कारियाणी के 12, लोया के 18, पंचाला के 7, गढ़डा मध्य प्रकरण के 67, वरताल के 20, अहमदाबाद के 3, गढ़डा अंत्य प्रकरण के 39 वचनामृतों को मिलाकर वरताल संस्था से प्रकाशित वचनामृतों की कुल मिलाकर 262 संख्या होती है। इसके उपरांत अहमदाबाद, असलाली व जेतलपुर के 11 वचनामृतों के साथ 273 'वचनामृत' संकलित किए गए हैं।

अनेक अवतार और महापुरुषों की वाणी उनके दहोत्सर्ग के बाद उनके भक्तों ने स्मृति के आधार पर संकलित की है। जब कि वचनामृत एकमात्र ऐसा ग्रंथ है कि जिसमें अक्षराधिपति पुरुषोत्तम नारायण की परावाणी यथावत् रूप में, प्रासादिक भाषा में संकलित हुई है। इसी कारण अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं कि वचनामृत के बिना अन्यत्र माल मानना वह मोह है।

शिक्षापत्री

आचारः प्रथमो धर्मः - जितना आचरण शुद्ध उतना ही जीवन शुद्ध। शुद्ध व पवित्र जीवन से सात्विकता बढ़ती है और मोक्षमार्ग आसान बनता है। इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण ने हमें मोक्षमार्ग पर गति देने के लिए 'शिक्षापत्री' नामक आचार ग्रंथ दिया। संवत् 1882 (सन् 1826) के महा शुक्ला पंचमी- वसंतपंचमी के दिन शिक्षापत्री रूपी आचार-संहिता अस्तित्व में आई। ऋषिमुनियों के अनेक स्मृतिग्रंथों का सार शिक्षापत्री में समाविष्ट है।

212 श्लोक के इस छोटे से ग्रंथ में साधु, गृहस्थ हरिभक्त और सधवा-विधवा स्त्रियों के आचार धर्म विस्तृत रूप से बताए गए हैं। जिनके

अनुसरण से जीवन सरल और विघ्नों से परे रहता है।

इस में तत्त्वज्ञान संबधित सिद्धांत भी समाहित हैं। जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म तथा परब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान भी शिक्षापत्री में दिया गया है। साथ ही ध्यान व उपासना की योग्य विधि का भी निर्देश किया गया है।

गुजरात के प्रसिद्ध कवि श्री नान्हालाल ने ठीक ही कहा है, 'श्रीकृष्ण ने अपने भक्तों की रक्षा में एक सुदर्शन चक्र रखा है, जब कि भगवान स्वामिनारायण ने अपने भक्तों की रक्षा में 212 सुदर्शन चक्र रखे हैं।'

वेदरस

भगवान स्वामिनारायण ने परमहंसों को पत्र द्वारा जो मार्गदर्शन दिया था, वही पत्रों का संकलन अर्थात् 'वेदरस !' इस पुस्तक के पाँच प्रकरण हैं। निर्लोभी, निष्कामी, नि:स्वादी, नि:स्नेही तथा निर्मानी वर्तमान की बातें प्रकरणानुसार की गई हैं। निर्लोभी वर्तमान के प्रकरण में भगवान स्वामिनारायण परमहंसों को बताते हैं कि 'आपके लिए इस कागज पर जो ब्रह्मविद्या के विचार हम लिख रहे हैं वे हमारे रहस्यरूप हैं तथा सर्व उपनिषद् का भी यही रहस्य है।'

यह वास्तव में बड़ा अद्‌भुत ग्रंथ है। आश्रित संप्रदाय के त्यागियों के लिए यह विशेष उपयोगी है। अक्षरब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान का धाम है और साकार स्वरूप में मुख्य भक्त के रूप में भगवान की सेवा में सदा-सर्वदा रहते हैं, ऐसे अक्षरब्रह्म के स्वरूप से जुड़कर पुरुषोत्तम भगवान की उपासना हमें पंचवर्तमान की मर्यादा में रहकर करनी है, ऐसा बोध करवाता यह ग्रंथ बड़ा विलक्षण है।

गुणातीतानंद स्वामी का उपदेशामृत

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी 40 वर्ष तक जूनागढ़ में महंत रहे। एक बार स्वामी ने भगवान स्वामिनारायण से पूछा, 'हे महाराज, ध्यान करना, आत्मारूप होकर बरतना, रोगियों की सेवा करना या भगवान की बातें करना, इनमें कौन सा साधन श्रेष्ठ है ?'

तब भगवान ने निर्णय दिया कि 'बातें करना ही श्रेष्ठ है।'

माया के गुणों से परे गुणातीतरूप जिनका आचरण है, ऐसे संत, जीवों पर अनन्त कृपा करके उपदेश देते हैं, और जीव को माया पार लगा देते हैं। अतः बातें करना श्रेष्ठ है। यह सोचकर स्वामी ने भी रात-दिन, पात्र-कृपात्र देखे बिना परावाणी की मानों बरसात बरसा दी!

रास्ते में चलते हुए, गाँव में, गाँव के बाहर, चूना की भट्ठी के पास या अन्य व्यवहार कार्य करते हुए भी स्वामी अपना ज्ञानप्रवाह बहाते रहे। वे अनेक बार कहा करते, 'ये तो अक्षरधाम की बातें हैं। ये बातें पुनः जन्म करने दे ऐसी नहीं है। यह तो अनंत संशयों को छेदकर भगवान की महिमा को दृढ़ करा दे ऐसी भगवान पुरुषोत्तम की बातें हैं। इससे अनादि अज्ञान भी मिट जाता है।' गुणातीतानंद स्वामी की ऐसी बातों को उनके साथ रहकर जागा भक्त, ठक्कर नारायण प्रधान, हरिशंकरभाई रावल, सद्‌गुरु बालमुकुंददास स्वामी तथा सदाशंकर अमरजी ने महिमापूर्वक लिख ली। स्वामी ने भी अचिंत्यानंद ब्रह्मचारी से इस ग्रन्थ की कथा सुनी, और तब जाकर इसे मान्यता दी। इन अद्‌भुत बातों के अभ्यास से वचनामृत का अर्थ अधिक स्पष्ट होता है। अतः गुणातीतानंद स्वामी की उपदेश वाणी एक तरह से वचनामृत पर लिखा हुआ भाष्य ही हैं।

स्वामी ने अपने उपदेशों में मुख्यतः श्रीजीमहाराज के पूर्ण पुरुषोत्तम स्वरूप की अद्‌भुत महिमा कही हैं। बड़े-बड़े सद्‌गुरु भी जिसे कहने में हिचकिचाते थे, स्वामी ने वह बेधड़क कह दिया। श्रीहरि की महिमा का प्रवर्तन करने में उन्हें शास्त्र की बाधा उत्पन्न नहीं हुई, इसके साथ-साथ वासना-खंडन, स्वधर्म, आत्मज्ञान, वैराग्य एवं माहात्म्य सहित भक्ति की बातें भी उन्होंने खूब कहीं।

सर्वप्रथम जूनागढ़ के वरिष्ठ सद्‌गुरु, एवं गुणातीतानंद स्वामी के शिष्य बालमुकुंद स्वामी ने इन बातों को 'स्वामी की बातें' नाम से पाँच प्रकरण में प्रकाशित करवाई। तदनन्तर कृष्णजी अदा ने सात प्रकरण में तैयार करवाई। वर्तमानकाल में इसे भी संशोधित करके संस्था द्वारा गुणातीतानंद स्वामी के उपदेशामृत पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। 'वचनामृत' के साथ इस ग्रंथ का ज्ञान भी जिसने पचा लिया है, वह ब्रह्मस्थिति से तनिक भी दूर नहीं है। स्वामी कहते हैं, 'ये बातें तो अंग्रेजों के लौहे (ओपरेशन के लिए उपयोग में

ली जाती अत्यंत महीन धारवाली ब्लेड) जैसी हैं। इसे सुनते ही माया के बंधन टूटने लगते हैं।' ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज व योगीजी महाराज ने इस ग्रंथ की अपार महिमा कही है।

सत्संगिजीवन

संस्कृत भाषा में रचित सत्संगिजीवन ग्रंथ के रचयिता शतानंद मुनि है। एक बार शतानंद मुनि भगवान स्वामिनारायण के कुछ स्तुतिश्लोक की रचना करके उनके पास गए। भगवान ने बहुत प्रसन्न होकर उन्हें वरदान माँगने के लिए कहा। शतानंदजी बोले, 'यदि आप प्रसन्न हों तो मुझे आपके चरित्र का ग्रंथ रचने की आज्ञा दीजिए। जिससे मेरा जीवन धन्य बने।'

भगवान ने तुरंत आशीर्वाद दिए और ग्रन्थनिर्माण शुरु हुआ। इस प्रकार इस ग्रंथ की उत्पत्ति संवत् 1885 के मार्गशीर्ष सुदी षष्ठी के दिन गढ़पुर में हुई। ज्यों-ज्यों ग्रंथरचना होती रहती, त्यों-त्यों शतानंदजी भगवान स्वामिनारायण तथा उनके वरिष्ठ संतों को सुनाते रहते। सभी ग्रंथ सुनकर अपना धन्यवाद व्यक्त करते।

इस ग्रंथ के पाँच प्रकरण हैं, और 17,000 श्लोक हैं। जिसमें इष्टदेव सहजानंद स्वामी के चरित्र का सुन्दर वर्णन किया गया है। साथ ही संप्रदाय के आश्रितों के लिए धर्माचरण की रीति भी निर्देशित की है। साधु तथा पार्षदों को पालने योग्य नियमों का भी विस्तृत विवरण इसमें दिए गए 'धर्मामृत' तथा 'निष्काम शुद्धि' ग्रन्थों से प्राप्त होता है। एकादशी आदि उत्सव, धर्मलोप के प्रायश्चित्त, देवपूजा की विधि आदि भी इस ग्रंथ में विस्तृत ढंग से दिया गया है।

धर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति के लक्षण, उपासना की रीति, विशिष्टाद्वैत सिद्धांत आदि तात्त्विक विषयों का भी इसमें सूक्ष्म रीति से विवेचन किया गया है। संप्रदाय का यह एक अमूल्य ग्रंथ है। ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज अनेक बार इस ग्रंथ के चौथे प्रकरण पर अधिकतर भक्ति संबंधी श्लोकों पर निरूपण किया करते थे। जिसमें धर्मपुर की महाराणी कुशलकुंवरबाई तथा सुरत के भालचंद्र सेठ का आख्यान सुन्दर रीति से प्रस्तुत करते। उनकी भक्तिमय शैली से सभाजन मुग्ध होकर कथा सुनते रहते।

श्रीहरिलीलाकल्पतरु

श्रीहरिलीलाकल्पतरु संस्कृत भाषा में रचित ग्रंथ है। इस ग्रंथ-निर्माण का इतिहास इस प्रकार है : एकबार वरताल में रघुवीरजी महाराज की अध्यक्षता में और अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के सांनिध्य में एक सभा का आयोजन हुआ। कुछ विद्वान संत, ब्रह्मचारी तथा हरिभक्त सभा में बिराजमान थे। रघुवीरजी महाराज की गद्दी पर चंपा के तीन पुष्प पड़े हुए थे। इसे देखकर रघुवीरजी महाराज को गुणातीतानंद स्वामी ने कहा, 'कितने ही इस पहले फूल तक पहुँचे हैं, कुछेक तो इस दूसरे फूल तक भी पहुँचे हैं, परंतु इस तीसरे फूल तक कोई पहुँचता ही नहीं !' इतना कहकर गुणातीतानंद स्वामी ने तीसरा पुष्प अचिंत्यानंद ब्रह्मचारी को दिया, और अपने वचनों के रहस्य को खोलते हुए कहा, 'कुछ लोग भगवान स्वामिनारायण को मर्यादा अवतार जैसे समझते हैं, कुछ लोग लीला अवतार जैसे समझते हैं, परंतु अनेक धामों से भी परे अक्षरधाम के अधिपति, सर्व अवतारों के अवतारी श्रीहरि स्वयं पृथ्वी पर पधारे हैं, ऐसा कोई नहीं समझता। अत: आप भगवान स्वामिनारायण के सर्वोपरि रूप को प्रकट करनेवाला सुन्दर ग्रंथ रचो !'

अचिंत्यानंद ब्रह्मचारी ने प्रसन्नतापूर्वक उस पुष्प को ग्रहण करते हुए स्वामीश्री की प्रेरणा से संस्कृत भाषा में अनुपम ग्रंथ 'श्रीहरिलीलाकल्पतरु:' की रचना की। बिना यशप्राप्ति की अपेक्षा, उन्होंने यह ग्रंथ आचार्य श्री रघुवीरजी महाराज के नाम से प्रकाशित करवा दिया।

इस ग्रंथ में अवतारी श्री स्वामिनारायण भगवान के दिव्य लीलाचरित्रों का गान किया गया है। इन लीलाचरित्रों से मुमुक्षुजनों को धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति का यथार्थ उपदेश प्राप्त होता है। महाराज को सर्वोपरि लिखने में रचयिता की कलम बिना किसी हिचकिचाहट के निरन्तर चलती रही है। साथ ही गुणातीतानंद स्वामी अक्षरब्रह्म हैं, यह बात भी इसमें लिखी गई है।

यह ग्रंथ बारह स्कंधों में विभाजित है। जिसमें 33,000 श्लोक हैं। इसमें भगवान स्वामिनारायण की मूर्ति का हूबहू वर्णन किया गया है। साथ ही उनकी लीला एवं उनके मनुष्यचरित्रों का भक्तिभावपूर्वक वर्णन किया गया है। पाठकों को पढ़ते ही दिव्यता का अनुभव होने लगता है। तदुपरांत श्रेष्ठ कवियों

को भी मात दे ऐसे अलंकार, छंदों के प्रयोगों से यह ग्रंथ साहित्य की एक अनुपम कृति भी साबित हुई है। संस्कृत साहित्य में कहा जाता है कि :

उपमा कालीदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

इस ग्रंथ में भी हमें उपमा, अर्थगौरव व पदलालित्य तीनों का संगम मिलता है। इस ग्रंथ का छठा स्कंध ग्रंथ का हृदय माना जाता है। वरताल के शास्त्री श्री श्वेतवैकुंठदासजी ने इस ग्रंथ का चार भागों में गुजराती भाषांतर करके प्रकाशित करवाया है। ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज ने इस ग्रंथ के प्रकाशन में बहुत बड़ा सहयोग दिया था तथा इसकी महत्ता में भी वृद्धि की थी।

भक्तचिंतामणि

गुजराती भाषा में रचित यह पद्य-ग्रंथ है। सद्गुरुवर्य निष्कुलानंद स्वामी की यह अनुपम रचना है। गुजरात के जामनगर जिले के छोटे से गाँव शेखपाट में जन्में, और अल्पशिक्षित होने के बावजूद भी स्वामी निष्कुलानंदजी ने भगवान स्वामिनारायण की कृपा से अद्भुत रचना की है। इस ग्रंथ में कुल 164 प्रकरण है। जिसमें भगवान स्वामिनारायण के चरित्रों के वर्णन के साथ-साथ होली व अन्नकूट उत्सव के प्रसंग भी दिए गए हैं। भगवान स्वामिनारायण ने जहाँ-जहाँ विचरण किया था। उन गाँवों के नाम तथा वहाँ के मुख्य हरिभक्तों की नामावलि भी इस ग्रंथ में दी गई है। 64 वां 'फगुए' का प्रकरण सत्संग में बहुत प्रचलित है। प्रकरण 76, तथा 103 से 108 में भगवान स्वामिनारायण के पुरुषोत्तमस्वरूप को उजागर किया गया है। प्रकरण 106 से 110 निष्काम, निर्लोभ, निःस्वाद, निर्मान तथा निःस्नेह इन पंचवर्तमानों से संबंधित हैं। प्रकरण 102 में महाराज की दिव्य लीला का तथा अपार महिमा का वर्णन है। इससे रचयिता स्वामी निष्कुलानन्दजी की भक्तिमय दृष्टि का दर्शन होता है। ग्रंथवर्णित दिव्य चरित्रों का चिंतन करनेवाले भक्तों के लिए इसका फल चिंतामणि तुल्य है अर्थात् सर्व शुभ मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। इस प्रकार 'भक्तिचिंतामणि' नाम सार्थक है। ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज हरिभक्तों के कष्टों को दूर करने के लिए

भक्तचिंतामणि का पाठ करने की आज्ञा दिया करते थे।

निष्कुलानंद काव्य

सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी के इस काव्यसंग्रह में 22 छोटे-छोटे ग्रंथों का समावेश किया गया है। जैसे कि पुरुषोत्तमप्रकाश, स्नेहगीता, वचनविधि सारसिद्धि, भक्तिनिधि, हरिबलगीता, हृदयप्रकाश, धीरजाख्यान, हरिस्मृति, चौसठपदी, मनगंजन, गुणग्राहक, हरिविचरण, अरजीविनय, कल्याणनिर्णय, अवतार चिंतामणि, चिह्न चिंतामणि, पुष्प चिंतामणि, लग्न शकुनावली, यमदंड, वृत्तिविवाह तथा शिक्षापत्री भाषा - ये सभी ग्रंथ अमूल्य हैं।

'पुरुषोत्तमप्रकाश' में श्रीजीमहाराज की सर्वोपरि महिमा बताई है। 41 व 42 वें प्रकरण में भगवान का संत द्वारा प्राकट्य रहता है यह बात प्रसिद्ध की है :

संत हुं ने हुं ते वळी संत रे, एम श्रीमुखे कहे भगवंत रे;
संत मानजो मारी मूरति रे, तेमां फेर नथी एक रति रे. (प्र. 41)
कह्युं बहु प्रकारे कल्याण रे, अति अगणित अप्रमाण रे;
पण सहुथी सरस संतमां रे, राख्युं वालमे एनी वातमां रे. (प्र. 42)

अर्थात् 'भगवान अपने श्रीमुख से कहते हैं कि मैं ही संत हुँ और संत में मेरा निवास है। संत को मेरी मूर्ति मानना चाहिए। क्योंकि संत में और मुझमें कोई अंतर नहीं है। शास्त्रों में बहुत प्रकार से मोक्ष की बात कही गई है। लेकिन सब से अच्छा मोक्ष का कार्य संतों की संगति से ही सिद्ध होता है।'

इस प्रकार सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी ने अपने ग्रंथों में गुणातीत संत को यथार्थ रूप से पहचानने के लक्षण बताए हैं। साथ ही गुणातीत संत की अद्‌भुत महिमा भी समझाई है। चौसठपदी में संत-असंत के लक्षण बताकर हमें सावधान किया है। श्रीजीमहाराज कहते थे कि यदि निष्कुलानंद स्वामी को संस्कृत भाषा पढ़ाई जाती, तो वे हमारे सर्वोपरि रूप को लिखने में कभी कसूर नहीं करते।

श्रीहरिलीलामृत

श्रीहरिलीलामृत ग्रंथ गुजराती साहित्य की दृष्टि से एवं संप्रदाय की

ऐतिहासिक जानकारियों की दृष्टि से समृद्ध तथा अतुलनीय है। यह ग्रंथ गुजरात के प्रसिद्ध कवि श्री दलपतराम ने आचार्य श्री विहारीलालजी महाराज के नाम से रचा, और प्रसिद्ध किया। छंद की गुँथनी के साथ चित्र-प्रबंध की एक विशेष प्रकार की शैली उस समय प्रचलित थी, इस ग्रंथ में भी देखी जा सकती है। विविध छंद, उपदेश की बेहतरीन रीति, उपमा-अलंकार तथा पदलालित्य से युक्त इस ग्रंथ को बारबार मधुर कंठ से गाने व सुनने की इच्छा रहा करती है। उपजाति छंद में लिखा हुआ उपदेश जीवन में बहुत उपयोगी साबित होता है। भगवान स्वामिनारायण की जीवनी के साथ-साथ भक्तों के आख्यान भी रोचक बन पड़े है। आचार्यश्री ने भगवान स्वामिनारायण के सर्वोपरिरूप को लिखने में किसी प्रकार का समझौता नहीं किया। इसीसे अपने इष्टदेव के प्रति उनकी भक्तिभावना परिलक्षित होती है। दश कलश (प्रकरणों) में प्रसिद्ध यह एक सुंदर ग्रंथ है।

अन्य ग्रन्थ: उपरोक्त ग्रंथों के उपरांत 'अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी का जीवन चरित्र', 'ब्रह्मस्वरूप प्रागजी भक्त का जीवन चरित्र'। 'ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज का जीवन चरित्र', 'ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज का जीवन चरित्र', और प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज का संक्षिप्त जीवनचरित्र आदि प्रेरक ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों में श्री अक्षरपुरुषोत्तम अर्थात् स्वामिनारायण संप्रदाय के इतिहास व तत्त्वज्ञान का अद्वितीय आलेखन हैं। इन ग्रंथों के लेखक श्री हर्षदराय दवे तथा अन्य लेखकों ने आधुनिक जनसमुदाय को रोचक व प्रेरक साहित्य प्रदान किया है।

13. ध्यान

योगशास्त्र के आचार्य हिरण्यगर्भ तथा महर्षि पतंजलि ने अष्टांगयोग के आठ अंगों में सातवां अंग 'ध्यान' बताया है। भगवान का स्मरण करना भी ध्यान है। परमात्मा के सिवा अन्य किसी भी पंचविषयों में वृत्ति न रहे ऐसे अविरत स्मरण को ध्यान कहा जाता है। महर्षि पतंजलि ने बताये हुए अष्टांगयोग में सातवे योग ध्यान के पश्चात् अंतिम सोपान समाधि को बताया है। अत: ध्यान सिद्ध करने के लिए शेष छह अंग भी सिद्ध करने आवश्यक है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, तथा समाधि ये आठ अंग अष्टांग योग की सिद्धि के लिए है।

यम अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह इन पाँचों गुणों का विकास। नियम के अर्न्तगत शारीरिक व मानसिक पवित्रता, संतोष, तपश्चर्या, स्वाध्याय एवं ईश्वरोपासना आदि लक्षण बताये गए हैं। स्थिर व स्वस्थ होकर लंबे समय तक एक ही शारीरिक स्थिति में बैठने का नाम है आसन। योगशास्त्र में 84 प्रकार के आसन बताए गए हैं। कुंभक, पूरक तथा रेचक द्वारा प्राण का नियमन करना प्राणायाम कहलाता है। इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों का त्याग करके, भगवान के स्वरूप में लीन हुए चित्त का अनुसरण करें, उस स्थिति को इन्द्रियों का प्रत्याहार कहते हैं।

चित्त का परमात्मा में स्थिर होना, धारणा कहलाता है। वृत्तियों का मात्र परमात्मा में ही एकाग्र होना तथा उसी ओर केन्द्रित होना ही ध्यान कहा जाता है। ध्येय स्वरूप परमेश्वर का अपरोक्ष अनुभव होना ही समाधि है। परंतु अष्टांगयोग के द्वारा साक्षात्कार पाने के ये सारे साधन अत्यंत दुष्कर हैं।

शास्त्रों में ध्यान की बड़ी महिमा कही है। ध्यान का फल एक हज़ार अश्वमेघ यज्ञ, एक सौ राजसूय यज्ञ तथा एक हज़ार पुंडरिक यज्ञों से भी अधिक माना गया हैं। यज्ञों के द्वारा मात्र स्वर्गादि सुख की प्राप्ति होती है, जबकि ध्यान की सिद्धि से भगवान की अपरोक्ष अनुभूति होती है, स्वयं भगवान का दर्शन होता है!

भक्तजनों को ध्यान करन के लिए शांत और पवित्र स्थान में बैठना चाहिए। शुद्ध आसन पर स्वस्तिकासन में पूर्व या उत्तर दिशा में मुख करके, दोनों हाथ गोद में रखकर, नेत्र को नासिका पर स्थिर करते हुए, स्थिर चित्त होकर, आत्मविचार करना चाहिए। अपनी आत्मा को स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीन देह, जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्था तथा सत्त्व, रज, तम तीन गुणों से परे मानना चाहिए। फिर ऐसा विचार करना कि जिसके एक-एक रोम में अनंत कोटि ब्रह्मांड अणु सदृश होकर उड़ते हैं, ऐसे भगवान के धामरूपी अक्षर मेरा स्वरूप है, ऐसा विचार करके परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। (वच. लोया 12)

श्रीजीमहाराज ने वचनामृत ग.अं. 31 में अपने प्रत्यक्ष स्वरूप के ध्यान करने का उपदेश देकर कहा है कि ध्यान करनेवालों को 'प्रत्यक्ष भगवान की मूर्ति और धाम की मूर्ति में लेशमात्र भी अन्तर प्रतीत नहीं होता। ऐसी प्रत्यक्ष मूर्ति का ध्यान नेत्रों के आगे करने पर उसमें और इसमें लेशमात्र भी अन्तर नहीं दिखता। वह मूर्ति तथा यह मूर्ति एक ही है। गुणातीत अक्षरधाम में जो मूर्ति है, वही मूर्ति प्रत्यक्ष है। इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। जिस प्रकार अक्षरधाम की मूर्ति गुणातीत है, वैसे ही मनुष्याकार मूर्ति भी गुणातीत है।'

श्रीजीमहाराज ने वचनामृत ग.प्र. 21 में कहा है कि 'अक्षर के दो स्वरूप हैं। इनमें से एक तो निराकार एकरस चैतन्य है उसे चिदाकाश, और ब्रह्मधाम कहते है, तथा वह अक्षर दूसरे रूप से पुरुषोत्तम नारायण की सेवा में रहता हैं।' इसके अनुसार भगवान स्वामिनारायण अक्षर में सदा-सर्वदा रहे हैं। उपरांत, 'जिस प्रकार अक्षर में रहे हैं, वैसे किसी दूसरे में नहीं रहे। दूसरों में तारतम्यता के अनुसार रहे हैं।' (वच. ग.प्र. 41)

इस अक्षरब्रह्म का प्रकट स्वरूप अर्थात् परम एकांतिक परम भागवत संत। ये संत ही एकांतिक धर्म के धारक हैं। इन्हीं प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत द्वारा श्रीजीमहाराज इस पृथ्वी पर सदैव प्रकट रहे हैं। मुमुक्षुओं को अपनी मूर्ति का सुख देकर जीवों को ब्रह्मरूप करके उनका आत्यंतिक कल्याण करते हैं।

जिस प्रकार लोहे का सरिया आग में तपकर लाल हो जाता है, उसके हर अणु में अग्नि होती है। उस वक्त उसका काला वर्ण या शीतलता का गुण अंशमात्र भी दिखाई नहीं पड़ता, अब भले ही उसे लोहे का सरिया ही कहा जाएगा, किन्तु वह हैं तो मूर्तिमान अग्नि! उसी प्रकार ऐसे प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत में श्रीजीमहाराज स्वयं आपाद-मस्तक सम्यक् रूप से प्रकट रहे हैं। (वच. ग.प्र. 27) ऐसे संत का ध्यान करना साक्षात् श्रीहरि का ध्यान है! प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत के ध्यान व पूजा से हम स्वयं भगवान स्वामिनारायण का ही ध्यान करते हैं।

'**ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः ।**' गुरु ही ध्यान का मूल है। माया अर्थात् अज्ञानमय तिमिर का नाश अनादि ब्रह्म गुणातीत संतरूप गुरु ही कर सकते

हैं। अतः भगवान का यह संत स्वरूप भी ध्यान करने योग्य हैं। 'राधा सहित श्रीकृष्ण का ध्यान करें।' (वच. ग.प्र. 5)

इस प्रकार अनादि व उत्तम भक्त के साथ ही भगवान का ध्यान करने का निर्देश शास्त्रसंमत है।

शिक्षापत्री के अनुसार ब्रह्मवेत्ता का ध्यान निषिद्ध है। (श्लो. 115), क्योंकि जीवदशा से ज्ञान प्राप्त करके मुक्तदशा प्राप्त करनेवालों का ध्यान करने से कोई लाभ नहीं है। '**पश्चादभूतबोधाश्च ध्याने नैवोपकारकाः ।**'

नैसर्गिको न वै बोधस्तेषामप्यन्यतो यतः।
तस्मात्तदमलं ब्रह्म निसर्गादेव बोधवत् ॥

शिक्षापत्री भाष्य में शतानंद मुनि ने शौनक मुनि का प्रमाण दिया है, उसके अनुसार भगवान के अनादि भक्त का ध्यान भगवान के साथ करने में कोई बाध नहीं है। यों तो अंतर्यामी रूप से भगवान का प्रवेश प्रकृतिपुरुष से लेकर हर भूमिका में हर स्वरूपों में है, परंतु फिर भी शास्त्र इन स्वरूपों का ध्यान करने का निषेध करता है। किन्तु यदि भगवान अपने किसी कार्य विशेष के निमित्त किसी में अनुप्रवेश करते हैं, तो वह तत्त्व भगवान का स्वरूप कहा जाता है, और वह ध्यान करने योग्य बन जाता है। उसके सिवा तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश या अन्य देवता भी ध्यान करने योग्य नहीं है। इसे श्रीजीमहाराज ने 'वेदरस' में स्पष्ट किया है।

सद्‌गुरु गोपालानंद स्वामी ने ध्यान के चार प्रकार बताए हैं : (1) सांग ध्यान (भगवान के संपूर्ण शरीर का ध्यान।) (2) उपांग ध्यान (भगवान के एक एक अंग का) ध्यान (3) सपार्षद ध्यान (भक्त मंडल के साथ भगवान का ध्यान) तथा (4) सलील ध्यान (भगवान की लीलाओं का स्मरण करना)। इस प्रकार गोपालानंद स्वामी भी भक्त सहित भगवान का ध्यान योग्य है, इसी मान्यता के पक्षधर हैं।

14. मानसी पूजा

भगवान स्वामिनारायण ने शिक्षापत्री में अपने आश्रितों को आदेश दिया है कि 'मन में कल्पना करके चंदन-पुष्पादि से भगवान की मानसी पूजा करनी चाहिए।'

हमारे मन में सहज ही यह प्रश्न उठता है कि मानसी पूजा क्या है?

इस शरीर से तो हम हमारे इष्टदेव भगवान स्वामिनारायण का पूजन, वंदन, सेवा आदि करते ही हैं। मानसी पूजा भी इसी तरह भगवान की पूजा-अर्चना मन में ही बिना कुछ पूजाद्रव्य लिए कल्पना के पूजाद्रव्यों से। हृदय की प्रेमातुर स्थिति से की गई पूजा ही मानसी पूजा है! भगवान स्वामिनारायण मानसी पूजा का महत्त्व समझाते हुए कहते हैं, 'अत्यंत रोमांचित होकर, गद्‌गदभाव से विभिन्न प्रकार से की गई मानसी पूजा और प्रत्यक्ष पूजा दोनों का गौरव समान है ! और बिना भाव की भक्ति अर्थात् शुष्क मन से की गई प्रत्यक्ष पूजा (पूजादि द्रव्य लेकर की गई पूजा) भी व्यर्थ है। (वच. सा. 3)

मानसी पूजा के तीन चरण हैं : (अ) अपने आपको अक्षर मानना। (ब) अपने देह के भाव से मुक्त होना। (क) भगवान की मूर्ति का अविरत चिंतन। इस प्रकार दिन में पाँच बार मानसी पूजा करने का आदेश दिया गया है।

(1) सुबह मंगला तथा श्रृंगार आरती के समय की मानसी पूजा : सर्वप्रथम भगवान को दातून, स्नानादि कराके धुले हुए सुंदर वस्त्र धारण करवाएं, फिर चंदन से पूजन-अर्चन तथा धूप-दीप अर्पण करने के बाद नैवेद्य अर्पण करें। इस प्रकार श्रीहरि की मूर्ति का निरन्तर चिंतन करते हुए, भगवान की दैनिक क्रिया में हम सेवक के रूप में सेवारत हैं, ऐसी कल्पना करें।

(2) दूसरी मानसी पूजा का समय राजभोग आरती का है, जो कि - मध्याह्न से पहले (दोपहर 12 बजे से पहले) है। इसमें प्रभु को भोजन का निमंत्रण देना है। भोजन के लिए पधारें भगवान को आसन पर विराजमान कीजिए। आपकी पसंदीदा भोजन सामग्री प्रभु को अर्पण कीजिए, प्रेम-भाव से भोजन कराएं, फिर भगवान को जल व मुखवास अर्पण कीजिए। थोड़ी देर बाद महाराज को पलंग पर सुलाते हुए स्वयं उनके पैर दबा रहे हों ऐसी कल्पना कीजिए।

(३) तीसरी मानसी पूजा : इस मानसी पूजा का समय दोपहर (मध्याह्न के पश्चात्) के बाद का अर्थात् तकरीबन चार बजे का होता है।

इस समय ठाकुरजी को योगनिद्रा से जगाएं तथा मुख धोने के लिए एवं पीने के लिए शीतल सुगंधित जल दें। फलफलादि नैवेद्य के रूप में अर्पण करें। उपरांत कल्पना कीजिए कि महाराज संत-हरिभक्तों के साथ नदी में स्नान करने पधारे हैं... वहाँ जलक्रीडा कर रहे हैं... सभी को आनंदित कर रहे हैं... ऐसा चिंतन भी कर सकते हैं!

(4) चौथी मानसी पूजा : यह संध्या समय की जाती है। भगवान स्वामिनारायण अपने धाम अक्षरब्रह्म तथा अनंतकोटि मुक्तों के सम्मुख बैठकर दर्शनदान दे रहे हैं, सभी भक्त प्रेमपूर्वक संध्या-आरती उतार रहे हैं। उसके बाद पूरी, दूध, सब्जी, अचार आदि से भरा थाल अति प्रेम से अर्पण किया जा रहा है, ऐसी कल्पना कीजिए।

(5) पाँचवीं मानसी पूजा : प्रतिदिन रात्रि को सोने से पहले सद्‌गुरु प्रेमानंद स्वामी, सद्‌गुरु मुक्तानंद स्वामी आदि रचित लीला चिन्तामणि, ध्यान चिन्तामणि के पद बोलने की संप्रदाय के आश्रितों की भक्तिपरंपरा रही है। जिसमें भगवान स्वामिनारायण की स्वाभाविक चेष्टा, चिह्न तथा चरित्रों का कीर्तन है। इस स्मृति के बाद श्रीहरि को जलपान करवा के सुंदर बिस्तर, तकिये व रजाई सहित सुखशय्या पर विश्रमाम देना, तथा पानी से भरा पात्र भी उनकी शय्या के समीप रखना, इस तरह की मानसी पूजा की जाती है।

इस प्रकार हमने देखा कि मानसी पूजा के द्वारा मन में ही भगवान का प्रत्यक्ष अनुभव किया जाता है। भगवान हमारे साथ हैं। ऐसी भावना इसमें सहज सिद्ध होती है। अतः विभिन्न ऋतुओं में भी उचित सामग्रियों का चिंतवन करके ऋतु के अनुसार भोजन, वस्त्र आदि अर्पण करना वाकई एक सुखद अनुभूति है ! ऐसी मानसी पूजा करने से भगवान के प्रति प्रेम तथा भक्ति की वृद्धि होती है और जीव का कल्याण होता है।

श्रीजीमहाराज ने वचनामृत वर. 5 में कहा हैं, 'जिस प्रकार भगवान की मानसी पूजा की जाती है, वैसे ही जो उत्तम हरिभक्त हो उसकी भी भगवान की प्रसादी (भगवान की समर्पित पदार्थों) से मानसी पूजा करनी चाहिए। उत्तम लक्षणवाले संत की प्रगाढ़ प्रेम पूर्वक एक समान सेवा करता है वह दो जन्मों, चार जन्मों, दस जन्मों या सौ जन्मों द्वारा भी उत्तम भक्त

सदृश होनेवाला हो वह इसी जन्म में उत्तम भक्त हो जाता है।'

इस वचन के अनुसार भगवान के उत्तम भक्त गुणातीतानंद स्वामी, भगतजी महाराज, शास्त्रीजी महाराज, योगीजी महाराज और वर्तमानकाल में प्रकट गुरुहरि प्रमुखस्वामी महाराज की मानसी पूजा भगवान स्वामिनारायण के साथ करना, बिलकुल शास्त्रसंमत है।

15. जनमंगलस्तोत्रम्

भगवान स्वामिनारायण के 108 नामों की इस जनमंगल नामावलि के रचियता 'ऋषि' शतानंद मुनि हैं। इस स्तोत्रमंत्र का छंद 'अनुष्टुप' है। इसके देवता 'धर्मनंदन श्रीहरि' हैं। इसका बीज 'धार्मिक' अर्थात् श्रीहरि हैं। इसकी शक्ति 'बृहद्व्रतधर' (नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत के धारक) श्रीहरि हैं। इस स्तोत्रमंत्र के आश्रयस्तंम्भ भी 'भक्तिनंदन' श्रीहरि हैं। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए इस स्तोत्रमंत्र का जाप किया जाता है।

इस स्तोत्र में 1 से 9 तक के नाम श्रीहरि के दिव्य स्वरूप को उजागर करते हैं। 10 से 16 तक धर्मभक्ति के घर पर रहकर किए चरित्रों की स्मृति करानेवाले नाम हैं। 17 से 42 पर्यन्त के नाम भगवान स्वामिनारायण के वनविचनरण की स्मृति करवाते हैं। 43 से 108 तक दिए गए नामों में भगवान स्वामिनारायण ने सत्संग में 28 वर्ष, 5 मास एवं 27 दिन तक मुमुक्षुओं के लिए जो कल्याणकारी चरित्र किए, उनकी स्मृति दी गई है।

भगवान के इन 108 नामों का पाठ करने से पूर्व स्वरूपध्यान के एक मंगलश्लोक से प्रारंभ करना होता है, जिसका अर्थ इस प्रकार है, 'नैष्ठिक वर्णीराज के वेष से भी अति रमणीय जिनका वेष है, मंदहास्य भरा जिनका मधुर मुखारविंद है, श्रेष्ठ देवों तथा मनुष्यों ने हर्षपूर्वक चंदन, पुष्पादि द्वारा जिनकी पूजा की है, ऐसे धर्मनंदन श्रीहरि का मैं ध्यान धरता हूँ।'

इस प्रकार ध्यान करके इस स्तोत्र का पाठ करें. 108 नाम और नामों का अर्थ इस प्रकार है :

1. ॐ श्रीकृष्णाय नमः
2. ॐ श्रीवासुदेवाय नमः
3. ॐ श्रीनरनारायणाय नमः
4. ॐ श्रीप्रभवे नमः
5. ॐ श्रीभक्तिधर्मात्मजाय
6. ॐ श्रीअजन्मने नमः
7. ॐ श्रीकृष्णाय नमः
8. ॐ श्रीनारायणाय नमः
9. ॐ श्रीहरये नमः
10. ॐ श्रीहरिकृष्णाय नमः
11. ॐ श्रीघनश्यामाय नमः
12. ॐ श्रीधार्मिकाय नमः
13. ॐ श्रीभक्तिनन्दनाय नमः
14. ॐ श्रीबृहद्व्रतधराय नमः
15. ॐ श्रीशुद्धाय नमः
16. ॐ श्रीराधाकृष्णेष्टदैवताय नमः
17. ॐ श्रीमरुत्सुतप्रियाय नमः
18. श्रीकालीभैरवाद्यतिभीषणाय नमः
19. ॐ श्रीजितेन्द्रियाय नमः
20. ॐ श्रीजिताहाराय नमः

---

1. 'श्री' से अक्षर गुणातीतानंद स्वामी तथा 'कृष्ण' से पुरुषोत्तम सहजानंद स्वामी को नमन अर्थात् अक्षरसहित पुरुषोत्तम को नमन।
2. 'श्री'-भक्त युक्त 'वासुदेव'-भगवान।
3. 'नर'-भक्त युक्त 'नारायण'-भगवान।
4. संकल्पमात्र से सर्व कार्य करने में समर्थ ऐसे प्रभु।
5. भक्तिधर्म के पुत्र के रूप में प्रकट।
6. जिसका जन्म प्राकृत जीवों की तरह कर्माधीन नहीं है, इसी कारण अजन्मा।
7. अति सुंदर मेघश्याम दिव्य विग्रहवाले, सर्व के चित्त को अपने में आकर्षित करते तथा चैत्र मास में जन्मे कृष्ण।
8. 'नर' अर्थात् भक्तों के आश्रयरूप, रामानंद स्वामी द्वारा रखा गया नाम 'नारायण मुनि।'
9. ब्रह्मादि को वश में रखनेवाले, आश्रितों के दुःख को हरनेवाले हरि।
10. 'हरि' से चित्त को हरनेवाले और 'कृष्ण' से असुरों का नाश करनेवाले। मार्कंडेय ऋषि द्वारा रखा नाम।
11. घनसमान श्याम 'घनश्याम'- बाल्यकाल का नाम।
12. बालवय में भी धर्म का अनुकरण करनेवाले, धर्म के पुत्र।
13. भक्तिदेवी को पुत्र के रूप में आनंद देनेवाले।
14. बृहद्व्रत - नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के धारक।
15. स्वयं शुद्ध-निर्दोष रहकर आश्रितों को शुद्ध करनेवाले।
16. भक्त और भगवान, आश्रितों जिन्हें अपना इष्टदेव माना गया है, ऐसे श्रीहरि।
17. वायुपुत्र हनुमानजी को अति प्रिय।
18. सौम्यमूर्ति होते हुए भी कालीभैरवादि के लिए महाभयंकर।
19. अपनी इन्द्रियों के विजेता।
20. जिह्वा इन्द्रिय पर हमेशा जय है, अपने आश्रितों को जितेन्द्रिय बनाते हैं...।

21. ॐ श्रीतीव्रवैराग्याय नमः
22. ॐ श्रीआस्तिकाय नमः
23. ॐ श्रीयोगेश्वराय नमः
24. ॐ श्रीयोगकलाप्रवृत्तये नमः
25. ॐ श्रीअतिधैर्यवते नमः
26. ॐ श्रीज्ञानिने नमः
27. ॐ श्रीपरमहंसाय नमः
28. ॐ श्रीतीर्थकृते नमः
29. ॐ श्रीतैर्थिकार्चिताय नमः
30. ॐ श्रीक्षमानिधये नमः
31. ॐ श्रीसदोन्निद्राय नमः
32. ॐ श्रीध्याननिष्ठाय नमः
33. ॐ श्रीतपःप्रियाय नमः
34. ॐ श्रीसिद्धेश्वराय नमः
35. ॐ श्रीस्वतन्त्राय नमः
36. ॐ श्रीब्रह्मविद्याप्रवर्तकाय नमः
37. ॐ श्रीपाषण्डोच्छेदनपटवे नमः
38. ॐ श्रीस्वस्वरूपाचलस्थितये नमः
39. ॐ श्रीप्रशान्तमूर्तये नमः
40. ॐ श्रीनिर्दोषाय नमः

---

21. तीव्र वैराग्य के धारक।
22. मुमुक्षुओं को भगवान में आसक्त करनेवाले।
23. योगियों के ईश्वर. योगियों ने जिसे अपना ध्येय माना हैं वे अथवा योगियों को अभीष्ट फल देनेवाले।
24. योग के अभ्यास के बिना केवल कृपा से ही अपने भक्तों में योग की कला का प्रवर्तन करनेवाले।
25. निर्विकार जिसका चित्त है।
26. जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म, परब्रह्म के स्वरूपों का निरूपण करनेवाले।
27. महान परमहंसों द्वारा ज्ञात।
28. तीर्थों को तीर्थत्व प्रदान करनेवाले।
29. तीर्थवासी मुनियों द्वारा आदर सहित पूजे जानेवाले।
30. क्षमा के समुद्र।
31. निरंतर निद्रा से रहित।
32. स्व-स्वरूप के ध्यान में ही जिनकी स्थिति है।
33. स्वयं तप का आचरण करके आश्रितों को भी तप का उपदेश देनेवाले।
34. योग, तप तथा ज्ञान में सिद्ध सत्पुरुषों के ईश्वर।
35. जिनका कोई अधिपति नहीं, स्वतंत्र।
36. आश्रितों में ब्रह्मविद्या प्रवर्तन करनेवाले।
37. वेदविरुद्ध मतवादियों का खंडन करने में अति चतुर।
38. स्वस्वरूप में जिनकी अचल स्थिति है।
39. दर्शनमात्र से आश्रितों को अतिशय शांति देनेवाली मूर्ति जिनकी है।
40. दंभ-लोभादि हेय दोषों से रहित।

41. ॐ श्रीअसुरगुर्वादिमोहनाय नमः
42. ॐ श्रीअतिकारुण्यनयनाय नमः
43. ॐ श्रीउद्धवाध्वप्रवर्तकाय नमः
44. ॐ श्रीमहाव्रताय नमः
45. ॐ श्रीसाधुशीलाय नमः
46. ॐ श्रीसाधुविप्रप्रपूजकाय नमः
47. ॐ श्रीअहिंसयज्ञप्रस्तोत्रे नमः
48. ॐ श्रीसाकारब्रह्मवर्णनाय नमः
49. ॐ श्रीस्वामिनारायणाय नमः
50. ॐ श्रीस्वामिने नमः
51. ॐ श्रीकालदोषनिवारकाय नमः
52. ॐ श्रीसच्छास्त्रव्यसनाय नमः
53. सद्यःसमाधिस्थितिकारकाय नमः
54. ॐ श्रीकृष्णार्चास्थापनकराय नमः
55. ॐ श्रीकौलद्विषे नमः
56. ॐ श्रीकलितारकाय नमः
57. ॐ श्रीप्रकाशरूपाय नम
58. ॐ श्रीनिर्दम्भाय नमः
59. ॐ श्रीसर्वजीवहितावहाय नमः
60. ॐ श्रीभक्तिसम्पोषकाय नमः

---

41. असुरगुरुओं में भी मोह उत्पन्न करनेवाले।
42. अति करुणा से परिपूर्ण नेत्रकमल जिनके हैं।
43. उद्धवावतार श्री रामानंद स्वामी स्थापित संप्रदाय को पोषित करनेवाले।
44. कृच्छादि व्रतों को बार-बार करनेवाले अहिंसादि पंच वर्तमानों के धारक।
45. लोक तथा शास्त्र में पाया जाता श्रेष्ठ शील-स्वाभाविक आचरण जिनका है।
46. साधु-ब्राह्मणों को आदरपूर्वक पूजनेवाले और दूसरों के द्वारा भी पूजानेवाले।
47. अहिंसात्मक यज्ञों के प्रवर्तक।
48. ब्रह्म-परब्रह्म के सदा दिव्य साकार स्वरूप के संस्थापक।
49. 'स्वामी' से अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी तथा 'नारायण' से जीव, ईश्वर, माया व अक्षरब्रह्म के नियंता - अर्थात् स्वामी सहित नारायण।
50. 'स्वामी' अर्थात् सर्व ऐश्वर्य संपन्न।
51. लोभ-दंभादि दोषो को आश्रितों के हृदय से निकालनेवाले।
52. आठ सच्छास्त्रों के श्रवणादि के व्यसनी।
53. 'सद्य' यमादि साधनों के बिना ही तत्काल अपने ऐश्वर्य से समाधि करनेवाले।
54. मंदिरों में भगवत् प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करनेवाले।
55. कौल मत- शाक्तपंथ अर्थात् वाममार्ग का खंडन करनेवाले।
56. कलिबल से उद्धार करनेवाले।
57. अक्षरब्रह्मपुर धाम में सदा दिव्यरूप में विराजमान।
58. दंभ से रहित।
59. शत्रुमित्रादि के भेदभाव बिना सर्व जीवों के इहलोक - परलोक के हित चिंतक।
60. नवधाभक्ति का अनन्य रीति से प्रतिपादन करनेवाले।

61. ॐ श्रीवाग्मिने नमः
62. ॐ श्रीचतुर्वर्गफलप्रदाय नमः
63. ॐ श्रीनिर्मत्सराय नमः
64. ॐ श्रीभक्तवर्मणे नमः
65. ॐ श्रीबुद्धिदात्रे नमः
66. ॐ श्रीअतिपावनाय नमः
67. ॐ श्रीअबुद्धिहृते नमः
68. ॐ श्रीब्रह्मधामदर्शकाय नमः
69. ॐ श्रीअपराजिताय नमः
70. ॐ श्रीआसमुद्रान्तसत्कीर्तये नमः
71. ॐ श्रीश्रितसंसृतिमोचनाय नमः
72. ॐ श्रीउदाराय नमः
73. ॐ श्रीसहजानन्दाय नमः
74. ॐ श्रीसाध्वीधर्मप्रवर्तकाय नमः
75. ॐ श्रीकन्दर्पदर्पदलनाय नमः
76. ॐ श्रीवैष्णवक्रतुकारकाय नमः
77. ॐ श्रीपञ्चायतनसम्मानाय नमः
78. ॐ नैष्ठितव्रतपोषकाय नमः
79. ॐ श्रीप्रगल्भाय नमः
80. ॐ श्रीनिःस्पृहाय नमः

---

61. वेदप्रणीत सत्य, प्रिय तथा हितकारी वाणी बोलनेवाले।
62. धर्म, अर्थ काम व मोक्ष – इन चारों पुरुषार्थों को स्वयं ही देनेवाले।
63. दूसरों के उत्कर्ष को देखकर प्रसन्न होनेवाले।
64. भक्तरूपी कवच से घिरे हुए भक्तों को कवचरूपी सुरक्षा प्रदान करनेवाले।
65. भक्तों को सद्बुद्धि देनेवाले।
66. अतिशय पावनकारी।
67. अज्ञान को दूर करनेवाले।
68. साकार रूप में अपनी सेवा में रहे ब्रह्म धाम का साकार रूप का तथा अक्षरमुक्तों को धारण किए हुए व्यापक रूप का परिचय देनेवाले।
69. कदापि पराजित नहीं होनेवाले।
70. सात समुद्र पार जिनकी कीर्ति फैली है।
71. निजाश्रितों को अपनी कृपा द्वारा जन्म-मरण की संसृति बन्धन से मुक्त करनेवाले।
72. उदार हृदय है जिनका।
73. सहज-स्वाभाविक आनंद में निमग्न।
74. पतिव्रता स्त्रीधर्म के प्रवर्तक।
75. कामदेव के गर्व का तत्काल नाश करनेवाले।
76. वैष्णवी, अहिंसात्मक यज्ञों को यथाविधि करवानेवाले।
77. विष्णुप्रधान पंचायतन देवों को पूज्य माननेवाले।
78. अष्टांग ब्रह्मचर्यव्रत का आजीवन पोषण करनेवाले।
79. अत्यंत उत्साही।
80. विषयप्राप्ति की इच्छा से रहित।

81. ॐ श्रीसत्यप्रतिज्ञाय नमः
82. ॐ श्रीभक्तवत्सलाय नमः
83. ॐ श्रीअरोषणाय नमः
84. ॐ श्रीदीर्घदर्शिने नमः
85. ॐ श्रीषड्ऊर्मिविजयक्षमाय नमः
86. ॐ श्रीनिरहङ्कृतये नमः
87. ॐ श्रीअद्रोहाय नमः
88. ॐ श्रीऋजवे नमः
89. ॐ श्रीसर्वोपकारकाय नमः
90. ॐ श्रीनियामकाय नमः
91. ॐ श्रीउपशमस्थितये नमः
92. ॐ श्रीविनयवते नमः
93. ॐ श्रीगुरुवे नमः
94. ॐ श्रीअजातवैरिणे नमः
95. ॐ श्रीनिर्लोभाय नमः
96. ॐ श्रीमहापुरुषाय नमः
97. ॐ श्रीआत्मदाय नमः
98. ॐ श्रीअखण्डितार्षमर्यादाय नमः
99. ॐ श्रीव्याससिद्धान्तबोधकाय नमः
100. ॐ श्रीमनोनिग्रहयुक्तिज्ञाय नमः

---

81. प्रतिज्ञा का पूर्णतः पालन करनेवाले।
82. भक्तों के अतिप्रिय।
83. अपकारी पर भी कृपा करनेवाले।
84. सभी कार्यों में दूरदर्शी।
85. शोक, मोह, क्षुधा, तृषा, जरा व मृत्यु इन छः ऊर्मियों के विजेता।
86. देहाभिमान से रहित।
87. किसी भी के प्रति द्रोहवृत्ति नहीं है जिनकी।
88. अत्यंत सरल स्वभाववाले।
89. प्रतिशोध की भावना से रहित, सभी का कल्याण सोचनेवाले।
90. आश्रितों को स्ववश में रखनेवाले।
91. इन्द्रिय वृत्ति से ऊपर जिनकी स्थिति है।
91. स्वभावसिद्ध विनयगुणशाली।
93. महान गुरु।
94. जिनके मन में कोई शत्रु नहीं है।
95. जिन्हें किसी पदार्थ का लोभ नहीं है।
96. महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों से युक्त।
97. भक्तों के अधीन जिनकी क्रियाएँ हैं।
98. ऋषियों द्वारा स्थापित धर्ममर्यादा के रक्षक।
99. व्यास मुनि के सिद्धांतों के प्रकाशक।
100. निजाश्रितों के मन को वश करने की युक्तियाँ बतानेवाले।

101. ॐ श्रीयमदूतविमोचकाय नमः
102. ॐ श्रीपूर्णकामाय नमः
103. ॐ श्रीसत्यवादिने नमः
104. ॐ श्रीगुणग्राहिणे नमः
105. ॐ श्रीगतस्मयाय नमः
106. ॐ श्रीसदाचारप्रियतराय नमः
107. ॐ श्रीपुण्यश्रवणकीर्तनाय नमः
108. ॐ श्रीसर्वमङ्गल-सद्रूप नानागुण-विचेष्टिताय नमः

---

101. यमदूतों के भय को दूर करनेवाले।
102. सभी संकल्प जिनके पूर्ण हैं।
103. सत्यवादी।
104. जीवों के गुनाहों ही अवगणना करके मात्र उनके गुणों की ओर देखनेवाले।
105. गर्व से रहित।
106. सदाचार जिन्हें प्रिय है।
107. जिनकी कथा का श्रवण तथा चरित्रों का कीर्तन पावनकारी है।
108. जिनकी दिव्य मूर्ति, दिव्य गुण और दिव्य चरित्र सर्व प्राणियों का कल्याण करनेवाले हैं।

16. जेठा मेर

भगवान स्वामिनारायण सत्संग प्रसार के लिए गाँव-गाँव घूम रहे थे। सभी को अपने संबंधमात्र से अक्षरधाम के अधिकारी बनाने के लिए श्रीहरि स्वयं भक्तों को दर्शन देकर अनुगृहीत करते थे।

एकबार वे संतमंडली के साथ गढ़डा से रवाना हुए। रास्ते में एक गाँव पड़ता था - मढ़डा। यहाँ जेठा मेर नामक एक हरिभक्त रहते थे।

महाराज के आगमन पर जेठा मेर तथा उनकी पत्नी ने सभी का बड़े प्रेमभाव से स्वागत किया। बरामदे में श्रीहरि तथा संतों के लिए बैठने की व्यवस्था की गई थी। विप्र द्वारा नाना प्रकार के व्यंजन बनवाकर सभी को भोजन करवाया। एक कमरे में जेठा मेर बैठे थे और दूसरे कमरे में उनकी पत्नी बैठी हुई थी। श्रीजीमहाराज ने दोनों को समीप बुलाए। तब जेठा मेर ने कहा, 'हम ब्रह्मचर्य का व्रत का पालन कर रहे हैं, अतः एक कमरे में साथ-साथ उठते-बैठते नहीं हैं।' प्रभु ने अत्यंत प्रसन्न होकर कहा, 'आज से तुम्हारा यह व्रत समाप्त होता है।' इतना कहकर कुछ उपदेश भरी बातें करने के बाद श्रीहरि ने विश्राम किया।

अब जेठा मेर अपनी पत्नी से कहने लगे, 'श्रीजीमहाराज के मुख पर देखिए कितना तेज है! उनकी वाणी से मानो अमृत बरस रहा है... आज तो मेरे मन की वृत्तियाँ उनके स्वरूप में खींची चली जा रही हैं। सचमुच, जबसे श्रीहरि के दर्शन किए हैं, नजर कहीं हटती ही नहीं। हमारे बड़े भाग्य हैं, जो आज भगवान स्वयं हमारे घर पधारे हैं।'

जेठा मेर बोल ही रहे थे कि उनको एक बड़ा आश्चर्य दिखाई दिया। शिव, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता तथा लक्ष्मी, पार्वती आदि देवियाँ भी दिखाई देने लगीं। कोई भगवान स्वामिनारायण को भोजन करवा रहा है, कोई जलपान करवा रहा है, कोई स्तुति गा रहा है, कोई आरती गा रहा है, इस प्रकार अत्यंत अलौकिक दृश्य देखकर जेठा मेर चकित हो चुके थे। तभी ब्रह्माजी जेठा मेर से बोले, 'हे जेठा मेर तुम और तुम्हारी स्त्री दोनों धन्य हैं। तुम्हें जन्म देनेवाले मातापिता भी धन्य हैं ! तुमने अनेक जन्म तक तप किया और अखंड ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया है, जिसका फल तुम्हें आज मिला है।'

जेठा मेर ने प्रश्न किया, 'हे ब्रह्मादि देवों! हमने कौन से युग में ब्रह्मचर्य का पालन व तप का प्रारंभ किया था?'

ब्रह्मादि देवों ने उत्तर दिया, 'कृतयुग (सत्युग) से तुम दोनों अखंड ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर रहे हो, इसीलिए प्रसन्न होकर प्रकट भगवान तुम्हारे यहाँ पधारे हैं।'

इतना कहकर ब्रह्मादि देव श्रीहरि को नमस्कार करते हुए अन्तर्धान हो गए!

शिव-ब्रह्मादि देवों को भी काम दोष के कारण विघ्न उपस्थित हुआ, ऐस भारी दोष को भी जेठा मेर ने वश में कर रखा था। इन पर श्रीहरि की अपार प्रसन्नता क्यों न हो?

जिस पुरुषोत्तम भगवान के संबंध के लिए अनेक देवता भी तरसते हैं, उस पुरुषोत्तम भगवान को हमने ब्रह्मस्वरूप संत में सहज पा लिए है। हमारा सद्भाग्य हैं कि इस जन्म हमें बहुत बड़ी प्राप्ति हुई है। हमें भी उनका संग करके, नियम-मर्यादा में रहकर भगवान स्वामिनारायण का अखंड भजन करना चाहिए।

17. कृपानंद स्वामी

'इस देह से मुझे केवल भगवान का भजन करना है।'

'मुझे भी अब इस संसार में नहीं रहना है।' दूसरे ने भी अपना मत व्यक्त किया।

भारत वर्ष के पूर्वी इलाकों में कन्नौज के दो ब्राह्मण मुमुक्षु इस प्रकार बातें कर रहे हैं। भगवान के दर्शन की दोनों की तीव्र अभिलाषा थी, दोनों घूमते हुए जगन्नाथपुरी आ पहुँचे। मंदिर की सफाई करना, ठाकुरजी के लिए पानी भरना, फूल चुनना, हार बनाना, चंदन घिसना आदि सेवा करते हुए अपना जीवन बीताते थे। सेवा द्वारा भगवान प्रसन्न होकर दर्शन देंगे इस भावना से सेवा करते हुए कुछ वर्ष सेवा में ही बीत गए।

वर्णीरूप में भगवान स्वामिनारायण जगन्नाथपुरी पधारे। उन्हें सेवक बनाने के चक्कर में वहाँ के साधु-वैरागियों में संघर्ष छिड़ गया। अनेक साधु मृत्यु को प्राप्त हुए। वर्णी आगे निकल पड़े। इधर दोनों मुमुक्षु ब्राह्मण भी उदास होकर चल दिए। अनेक तीर्थों का भ्रमण किया, पर कहीं भी मन स्थिर नहीं हुआ। अन्त में द्वारिका जाते हुए भुज पहुँच गए।

उस समय महाराज भगवानजीभाई के घर सदाव्रत चला रहे थे। दोनों ब्राह्मण ने यहाँ श्रीहरि के दर्शन किए तो उनको स्मरण हो आया कि यह वही वर्णी है, जिनको जगन्नाथपुरी में हमने देखा था ! दोनों के मन में परम शांति हुई। भगवान स्वामिनारायण ने पूछा, 'आप लोग कौन हैं? कहाँ से आए हैं? और कहाँ जाना है?'

'हम जगन्नाथपुरी से आए हैं। द्वारिका दर्शन करने जाना था पर आपके दर्शन से ही अपार शांति मिली है, अब तो हमारे लिए यहीं द्वारिका है ! हम आपकी सेवा में रहना चाहते हैं। अत: हमें दीक्षा दीजिए।'

'आपने क्या सोचकर यह निर्णय लिया है ?' श्रीहरि ने पूछा।

'आप भगवान हैं और आपके चरणों में ही अड़सठ तीर्थ समाए हुए हैं। नीलकंठ वर्णी के रूप में हम आपको जगन्नाथपुरी में पहचान नहीं पाए। परंतु आज हमें प्रतीति हो चुकी है कि कल्याण तो मात्र आपके ही हाथों से होना है।'

भगवान ने प्रसन्न होकर दोनों को दीक्षा प्रदान की। उनमें से एक थे कृपानंद स्वामी।

कृपानंद स्वामी को श्रीजीमहाराज के प्रति असाधारण स्नेह था। उनसे दूर होने का अवसर आते ही स्वामी के रोम-रोम से रक्तबूंदें निकलने लगतीं। एक बार अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने कहा, 'आपको विरह की इतनी वेदना होती है, तो भगवान के अंतेवासी सेवक नाजा जोगिया से कहलवा दो, ताकि भगवान तुम्हें अपने पास रखें।'

कृपानंद स्वामी तुरंत बोले, 'क्या महाराज कुछ जानते नहीं? वे तो अन्तर्यामी हैं, यदि मैं उनको अंतर्यामी, सर्वज्ञ न मानूँ, और ऐसा कहलवाऊँ तो मुझे से बड़ा कुसंगी कोई नहीं है !' इस प्रकार की उनकी उच्च स्थिति और समझ थी वे कहा करते कि ज्ञानी बनें, पर प्रेमी नहीं, क्योंकि बिना ज्ञान का प्रेम अनेक विघ्न उपस्थित कर देता है।

प्रथम पंक्ति के वरिष्ठ संत होते हुए भी वे भगवान स्वामिनारायण की छोटी सी आज्ञा का भी अक्षरशः पालन करते। वे मानते थे कि भट्ठी में गर्म किया हुआ लोहे का सरिया गले के आरपार उतार देने पर जैसी पीड़ा होती है, वैसी ही पीड़ा महाराज की आज्ञा का लोप करने से होनी चाहिए। जो इतने वचननिष्ठ हो, उन्हें पंचविषय में भी उतनी ही अनासक्ति क्यों न होती? इस लोक का कोई पदार्थ उन्हें आसक्त नहीं सकता था।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है, 'दूसरों को तो पदार्थों से प्रसन्न किया जा सकता है, पर मुक्तानंद स्वामी, गोपालानंद स्वामी तथा कृपानंद स्वामी को कोई चाहे जितना सुन्दर पदार्थ देकर भी प्रसन्न नहीं कर सकते! उनको तो दीन बनकर ही वश किया जा सकता है।'

गुणातीतानंद स्वामी, कृपानंद स्वामी के मंडल में लम्बे समय तक रहे थे। कृपानंद स्वामी की उन्होंने बहुत सेवा की थी। कीर्तन तथा कथावार्ता से भी उन्हें प्रसन्न किए थे। गुणातीतानंद स्वामी कहते कि 'सभी मंडलों में शिथिलता चल सकती है, पर कृपानंद स्वामी के मंडल में बिलकुल नहीं चल सकती! क्योंकि कृपानंद स्वामी नियम-पालन करने-करवाने में पर्वत की तरह अटल थे। प्रत्येक सप्ताहांत पर साधुओं की झोलियाँ देखते, कि साधु के पास नियम विरुद्ध कोई चीजवस्तु तो नहीं आई है! अतः मंडल के

सभी सदस्य सदा जागृत रहते।

एक बार कृपानंद स्वामी को एक साँप ने डँस लिया। उन्होंने तुरंत कहा, 'मुझे दूसरी कोई दवा नहीं करनी है, सिर्फ स्वामिनारायण महामंत्र का जाप करो।' भजन के प्रताप से साँप का ज़हर उतर गया। ऐसी अपार श्रद्धा उन्हें स्वामिनारायण मंत्र के प्रति थी।

कृपानंद स्वामी बिना समाधि के ही स्मृति से, ध्यान से, ज्ञान से भगवान स्वामिनारायण के स्वरूप में अखंड वृत्ति रखते। ऐसे संत के सत्संग से ही हम श्रीहरि के हृद्‌गत अभिप्राय को जान सकते हैं।

18. वचनामृत

वचनामृत 22 : भगवत्स्मरण के बिना सभी साधना शून्य

संवत् 1876 में पौष शुक्ला चतुर्थी (सोमवार, 20 दिसम्बर, 1819) को मध्याह्न के समय श्रीजीमहाराज श्रीगढ़डा-स्थित दादाखाचर के राजभवन में पूर्वी द्वार के कमरे के बरामदे में पलंग पर विराजमान थे। वे श्वेत वस्त्र पहने हुए थे और उन्होंने अपनी पाग में फूलों का तुर्रा खोंस रखा था और दोनों कानों के ऊपर पुष्पगुच्छ धारण किए हुए थे। उनके कंठ में गुलदावदी के फूलों का हार सुशोभित हो रहा था। वे पूर्व की ओर मुखकमल किए हुए विराजमान थे। उनके मुखारविन्द के समक्ष सभा में परमहंस तथा स्थान-स्थान के हरिभक्त बैठे थे। परमहंस कीर्तन कर रहे थे।

उस समय श्रीजीमहाराज बोले कि 'सुनिये, एक बात कहते हैं।' तब समस्त परमहंस कीर्तन-गान बंद करके बात सुनने के लिए तत्पर हो गए। श्रीजीमहाराज बोले, 'मृदंग, सारंगी, सरोद तथा ताल आदि वाद्ययन्त्रों के साथ गाए जानेवाले कीर्तन के समय, यदि भगवान की स्मृति न रहे तो जो कुछ गाया, वह अनगाया-सा ही रहता है। वैसे तो जगत में ऐसे कितने ही जीव हैं, जो भगवान का विस्मरण करके गाने-बजाने में लगे रहते हैं, तो भी उससे उनके मन को शान्ति नहीं मिल पाती। इसलिए, भगवान की मूर्ति का स्मरण करते हुए ही **भगवान के कीर्तन गायें, भगवन्नाम-रटन करें तथा नारायणधुन आदि जो भी करें, भगवान की मूर्ति की स्मृति के साथ ही**

करें। भजन करने के लिए बैठें तब तो अपनी चित्तवृत्ति भगवान में रखते ही हैं, परन्तु भजन से उठकर अन्य क्रिया करते हुए भगवान की तरफ ध्यान नहीं लगाते हैं, तो ऐसे लोगों की चित्तवृत्ति भजन में बैठने पर भी भगवान के स्वरूप में स्थिर नहीं हो पाएगी। इसलिए, चलते-फिरते, खाते-पीते तथा समस्त क्रियाओं में भगवान के स्वरूप में वृत्ति रखने का अभ्यास करना चाहिए। ऐसा करते रहने पर वह भगवद्भजन के लिए बैठेगा, तो उस वक्त उसकी वृत्ति भगवान में स्थिर हो जाएगी। भगवान की ओर जिसका मन इस तरह लग गया तो कामकाज के समय भी उसकी वृत्ति भगवान में बनी रहेगी। परंतु जो ग़फ़लत में रहनेवाला हो, उसका मन तो भजन के समय भी भगवान में मन स्थिर नहीं रह पाएगा। इसलिए, भगवान के भक्त को सावधान होकर भगवान के स्वरूप में अपनी वृत्ति लगाए रखने का अभ्यास करते रहना।' इतनी बात करके श्रीजीमहाराज बोले कि 'अब कीर्तन करिए।'

॥ इति वचनामृतम् ॥ 22 ॥

निरूपण

भगवान स्वामिनारायण इस वचनामृत में कहते हैं : भगवान की स्मृति रखकर ही कीर्तन, भजन, धून तथा नामरटन करना चाहिए। बिना स्मृति के गाने पर कदाचित् बाह्य आनन्द तो मिल सकता है, पर उसमें से शांति व सुख नहीं मिलेगा। अतः भगवान की स्मृति सहित सभी क्रिया करनी चाहिए, ताकि शांति, सुख और आनंद की अनुभूति हो सके।

पूजा-भजन आदि करते समय तो भगवान की स्मृति होनी चाहिए, लेकिन व्यवहार की स्मृति नहीं होनी चाहिए। व्यवहार की कुछ क्रियाएँ ऐसी होती है, कि उन क्रियाओं के समय भी हम भगवान में वृत्ति रखने का अभ्यास कर सकते हैं। बिना भगवान की स्मृति हर क्रिया जीव के लिए बन्धनरूप साबित होती हैं। जिस व्यक्ति का चित्त अन्य क्रियाओं के समय भी भगवान में स्थिर नहीं होता, उसका चित्त भजन के समय कैसे स्थिर होगा ? उसे जगत के पंचविषयों का ही स्मरण चलता रहेगा। इसीलिए श्रीजीमहाराज आग्रहपूर्वक हमें सभी क्रियाओं में भगवान की स्मृति रखने का उपदेश देते हैं।

अब प्रश्न ये हैं कि भगवान की स्मृति रखकर क्रियाएँ कैसे हो सकतीं? इस साधना से क्या लाभ है? और क्या यह संभव है? इन प्रश्नों के उत्तर में यही कहना उचित होगा कि जिस प्रकार मछली पानी में रहते हुए भी अपनी सारी क्रियाएँ करती है, उसी प्रकार हमें भी शुभाशुभ फल की इच्छा रखें बिना मात्र इष्टदेव की प्रसन्नता के लिए उनकी स्मृति में डूब कर ही ये क्रिया करनी हैं। तो मन भगवान की निरन्तर स्मृति करता रहेगा। हाँ, इसके अभ्यास के प्रारंभ में थोड़ी-बहुत मुश्किलें आ सकती हैं, पर भगवान और संत की कृपा से तथा लगातार अभ्यास करते रहने से हमारी क्रियाएँ, भगवन्मय क्रियाएँ हो जाएँगी।

वचनामृत 54 : भागवतधर्म एवं मोक्ष का द्वार

संवत् 1876 में माघ शुक्ला एकादशी (बुधवार, 9 फरवरी, 1820) को स्वामी श्रीसहजानन्दजी महाराज श्रीगढ़डा स्थित दादाखाचर के राजभवन में श्रीवासुदेवनारायण के मन्दिर के आगे पश्चिमी द्वार के कमरे के बरामदे में पलंग पर गादी-तकिया रखवाकर विराजमान थे। उन्होंने श्वेत धोती धारण की थी, जरी के पल्लेवाला नीले रंग का 'रेटा' ओढ़ा था और आसमानी रंग का जरीदार रेशमी फेंटा सिर पर बाँधा था। उनके मुखारविन्द के समक्ष सभा में संतवृंद तथा स्थान-स्थान के हरिभक्त बैठे हुए थे।

उस समय मुक्तानन्द स्वामी ने प्रश्न पूछा कि 'हे महाराज! श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में जनकराजा तथा नव योगेश्वर के संवाद द्वारा बताए गए भागवतधर्म का पोषण कैसे होता है और जीव के लिए मोक्ष का द्वार किस प्रकार खुला रह सकता है?'

तब श्रीजीमहाराज बोले कि '**स्वधर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा माहात्म्यज्ञान सहित भगवद्भक्ति करनेवाले भगवान के एकान्तिक साधु के सत्संग से भागवतधर्म का पोषण होता है तथा ऐसे साधु के प्रसंग (अत्यंत आत्मबुद्धि-प्रीति) से ही जीवों के लिए मोक्ष का द्वार भी खुल जाता है।** यही बात कपिलदेव भगवान ने देवहूति से कही है :

'प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥'

इस जीव को अपने सम्बंधीजनों से जैसा दृढ़ प्रसंग (लगाव) रहता है, वैसा का वैसा ही प्रसंग यदि भगवान के एकान्तिक साधु से रहे, तो इस जीव के लिए मोक्ष का द्वारा खुल जाता है।'

फिर शुकमुनि ने पूछा, 'चाहे कैसी भी आपत्ति आ जाए, किन्तु स्वधर्म से विचलित न होनेवाले पुरुष को किस लक्षण द्वारा परखा जा सकता है?'

श्रीजीमहाराज बोले, **'जिसे परमेश्वर के वचनों के पालन की चिन्ता रहती है तथा छोटे-बड़े वचन का लोप न कर सके, ऐसा जिसका स्वभाव होता है, उसे चाहे कैसा ही आपतकाल आ जाए, तो भी वह धर्मच्युत नहीं होता। इसीलिए, जिसमें वचन-पालन की दृढ़ता रहती है, उसका ही धर्म सुदृढ़ रहता है, तथा सत्संग भी उसीका सुदृढ़ रहता है।**

॥ इति वचनामृतम् ॥ 54 ॥

निरूपण

धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति युक्त धर्म को एकांतिक धर्म कहते हैं। भगवान के प्रकट स्वरूप के निश्चय में ही भागवत धर्म का पोषण होता है। श्रीमद्भागवत के उपरोक्त संवाद में प्रश्न आता है कि श्रीकृष्ण भगवान के अंतर्धान होने के बाद धर्म किसकी शरण में रहा है? उसी प्रकार मुक्तानंद स्वामी ने भी यहाँ प्रश्न पूछा : भागवतधर्म का पोषण किस प्रकार होता है? अर्थात् भागवतधर्म का अस्तित्व पृथ्वी पर सदैव रहने के कौन से मुख्य कारण होते हैं ? जीव के लिए मोक्ष का द्वार कैसे खुलता है?

भगवान स्वामिनारायण उत्तर में कहते हैं कि स्वधर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा माहात्म्यज्ञान युक्त भक्ति जिसमें हो, ऐसे परम एकांतिक संत की निश्रा में भागवत धर्म रहता है। ऐसे गुणातीत संत-परम एकांतिक संत के प्रसंग से ही मुमुक्षुजन भागवतधर्म धारण कर सकते हैं, अन्य कोई उपाय नहीं है। इसी भागवतधर्म को प्राप्त करना या सिद्ध करना ही 'मोक्ष का द्वार खोलने' के बराबर है। अत: भागवतधर्म के रक्षक तथा पोषक ऐसे परम एकांतिक संत ही है, उनके प्रसंग से मोक्ष का द्वार खुलता है।

भगवान स्वामिनारायण के समकालीन विद्वान दीनानाथ भट्ट की बात है, वे भागवत के बहुत बड़े पंडित थे, और पूरा ग्रंथ उनको कंठस्थ था। एक बार

महाराज ने उनसे प्रश्न पूछा, 'भागवत में आपने मोक्ष का कौनसा श्लोक निर्धारित करके रखा है?' तब दीनानाथजी उत्तर नहीं दे सके। तब श्रीजीमहाराज ने 'प्रसङ्गमजरम्' श्लोक कहा। इसमें 'प्रसंग' की व्याख्या इस प्रकार की जाती है : जीव का उसके संगेसंबंधियों से जिस प्रकार का स्नेह व आत्मबुद्धि है, उसी प्रकार यदि ऐसे परम एकांतिक संत के साथ हो जाए तो वही 'प्रसंग' है और उसी से जीव के लिए मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है। क्योंकि सच्चे संत हमेशा भगवान से जोड़ते हैं, न कि अपने आपसे।

इस वचनामृत में महाराज और भी एक महत्त्वपूर्ण बात बताते हैं, कि जिसे परमेश्वर का निरंतर अनुसंधान है और आज्ञा पालन में उत्साह है, वह कदापि धर्म मर्यादा का भंग नहीं करता। जिसे आज्ञापालन की दृढ़ता नहीं है, उसका धर्म भी दृढ़ नहीं रहेगा तथा सत्संग भी दृढ़ नहीं होगा।

19. राजाभाई

सौराष्ट्र के जूनागढ़ जिले में अगतराई गाँव के पास खोरासा नामक छोटा सा गाँव बसा हुआ है। यहाँ राजाभाई नामक गरासिया राजपूत जाति के भक्तराज रहते थे। पूर्व जन्म के अच्छे कर्म से उन्हें श्रीजीमहाराज के परमहंसों का योग प्राप्त हुआ। उनका अन्त:करण भक्तिरंग में रंगा जा चुका था। वे भगवान स्वामिनारायण के अनन्य आश्रित थे। जगत-व्यवहार में रहते हुए भी वे जनक विदेही की तरह जगत से अनासक्त रहते थे। संतों-भक्तों की सेवा करना ही अपना परम धर्म मानते थे। गाँव में उनकी अच्छी खासी खेती थी। संप्रदाय के उत्सवों के अवसर पर वे खेती वगैरह सबकुछ छोड़कर सीधे भगवान स्वामिनारायण के पास पहुँच जाते।

गाँव में सत्संगी बहुत कम रहते थे। गाँव के एक वणिक हरिभक्त को राजाभाई से घनिष्ठ मित्रता थी। वर्ष में दो एक बार संतवृन्द गाँव को सत्संग लाभ देने के लिए एक संत मंडल आया करता था, और राजाभाई भी संतों की भोजनादि से संभावना करते रहते थे। राजाभाई का नियम था कि संतों की भोजनादि की सेवा उनके घर से ही दी जाए! लेकिन एक दिन कुछ और ही घटना घटी।

हमेशा की तरह संतों का मंडल खोरासा आ पहुँचा। उस समय राजाभाई

किसी आवश्यक काम से दूसरे गाँव गए थे। संतों ने गाँव के चौराहे पर एक छोटी सी जगह पर पड़ाव डाला। वणिक भक्त भोजन की व्यवस्था करने के लिए तुरन्त राजाभाई के घर पहुँचे, और सीधा-सामान के लिए उनकी पत्नी को विनती की, 'संत पधारे हैं। भोजन के लिए सीधा दीजिए।'

तब वह तुनककर बोली, 'क्या साधुओं को तो कोई काम-धंधा नहीं है? जो कि हर साल चले आते हैं! मुझे कोई फ़ुर्सत नहीं है! और चक्की पीसते-पीसते थक गई हूँ। क्या तुम्हारा घर जल गया है, जो बार बार यहाँ आ धमकते हो?' सेठ को बहुत बुरा लगा, परंतु समय को देखते हुए बिना कुछ कहे वे अपने घर चले गए तथा अपने घर से संतों की व्यवस्था कर दी।

शाम को राजाभाई अपने गाँव लौटे। गाँव में प्रवेश करते ही उन्हें संतों के दर्शन हुए। राजाभाई ने चरणस्पर्श करके संतों का कुशलक्षेम पूछा। फिर घर जाते समय रास्ते में सेठ की दुकान पर पूछ लिया, 'जय स्वामिनारायण, सेठजी, संतों के लिए सीधासामान तो अपने घर से ही लाए थे न?'

सेठ ने कहा, 'जैसा ठीक लगा वैसा किया, तुम्हारा और हमारा, क्या कुछ अलग है?' राजाभाई को आश्चर्य हुआ। दुबारा पूछा तो सेठ ने सारा वृत्तांत कह सुनाया।

राजाभाई को गहरा आघात लगा। मन ही मन उन्होंने एक निर्णय लिया और सोचने लगे, 'सारा दिन में जी-तोड़ मेहनत करके स्त्री की सारी इच्छाएँ पूरी करता हूँ, और उसे इसकी बिलकुल कद्र नहीं? हमारी जरा-सी भी इच्छा उससे संभाली नहीं जाती? तो इस संसार में रहने से क्या फायदा?!'

वे शांत मुद्रा में घर आए, फिर कहा, 'अरी, भागवान्, साधुओं को सीधा न देकर तूने बिलकुल ठीक किया! गृहस्थ की परिस्थिति को देखे बिना हर साल वे यहाँ आ धमकते है, यह क्या ठीक है भला?' राजाभाई ने बिलकुल स्वस्थता से कहा।

अब स्त्री के मन में जो डाँट पड़ने का भय था, निकल गया। उसने कहा, 'मैंने यही सोचकर बनिये को खाली हाथ लौटा दिया था!'

राजाभाई बिना कुछ बोले सब कुछ सुनते रहे, दूसरे दिन से ही उन्होंने अपना व्यवहार समेटना शुरू किया। सोने के गहनों तथा गाय-बैलों को बेचकर चार हज़ार रुपये इकट्ठे किए। एक शिक्षित ब्राह्मण से अपनी

पत्नी के नाम एक खत लिखवाया कि 'तुम्हारा भाई बहुत बीमार हैं। तुरंत पीहर आ पहुँचो!' खत पाते ही वह अपने मायके चली गई।

इधर राजा भक्त ने घर को ताला लगा दिया, पड़ौसी को चाबी देते हुए कहा, 'मैं त्यागी होने के लिए गढ़डा जा रहा हूँ। उसे कहना कि अब मेरी आसा न रखे। उसका देहनिर्वाह होता रहे उतनी ज़मीन छोड़कर जा रहा हूँ।'

फिर भक्तराज गढ़डा आ पहुँचे। भगवान स्वामिनारायण के चरणों में रूपयों की थैली रखकर सारी हक़ीकत सुनाई। महाराज ने कहा, 'धन्य है राजाभाई, अब बोलो, तुम्हें हमारे कहे अनुसार करना है या फिर साधु बनना है?'

राजाभाई तो केवल हाथ जोड़कर खड़े रहे। श्रीजीमहाराज ने पर्वतभाई की ओर संकेत करते हुए कहा, 'पर्वतभाई के पुत्र अभी छोटे हैं। तुम जाकर उनके खेत में उनका हल चलाओ।'

महाराज की आज्ञा सिर आँखों पर रखते हुए राजाभाई ने 13 वर्ष तक पर्वतभाई का हल जोता। गरासिया-राजपूत होने के बावजूद जातिगत अहंकार को छोड़कर भगवान के भक्त की सेवा की।

खोरासा से उनके अनेक स्वजन राजा भक्त को समझाने के लिए आते, परंतु वे सच्चे वैराग्यनिष्ठ थे और बिना काम किसी से बात भी नहीं करते!

जब पर्वतभाई के पुत्र बड़े हो गए तब श्रीहरि ने राजा भाई को गढ़डा बुलाकर दीक्षा प्रदान की। 'अक्षरानंद स्वामी' नाम देकर उन्हें वरताल के लक्ष्मीनारायण देव के मंदिर के महंत बनाए। उन्होंने आजीवन श्रीजीमहाराज की आज्ञा में रहकर सत्संग की सेवा की तथा महाराज की प्रसन्नता पाकर वे परमपद के अधिकारी बने।

भगवान तथा भगवान के प्रति ऐसी आत्मबुद्धि रखनेवाले भक्त को तप-त्याग, वैराग्य, आदि की आवश्यकता नहीं होती।[1]

---

1. संप्रदाय के इतिहास में ऐसी घटना भी प्रसिद्ध है कि राजाभाई ने भगवान स्वामिनारायण से कहा था कि आप मुझे अपने अक्षरधाम का सुख प्रदान करें. महाराज ने उनकी यह प्रार्थना स्वीकार करते हुए उनको कुछ समय में ही भगवान के धाम के अधिकारी बनाये थे.

20. स्वयंप्रकाशानंद स्वामी

'सोरठ देश में कोई जीवनमुक्ता प्रकट हुए हैं और भगवान कहलाते हैं। आपने उनका नाम सुना है?' आश्रम के बरामदे में कुछ वैरागी तीर्थवासी परस्पर बातें कर रहे थे।

'ना, ना ! हमने तो किसी ऐसे पंथ के बारे में नहीं सुना।'

'अरे! उनकी तो बात ही कुछ ओर है! अनेक लोगों को अपने दर्शनमात्र से समाधि करवाते हैं। भगवान के धाम में भेजते हैं, और खुद का भजन करवाते हैं।'

'अरे, यह तो बड़ी अद्‌भुत बात है। तुम लोगों को कहाँ से खबर मिली?' अन्दर कमरे में विराजमान महंत ने प्रश्न किया।

प्रश्न पूछते ही वहाँ अचनाक दिव्य प्रकाश फैलने लगा। रात में भी दिन की तरह उजाला हो गया। महंत ने एकदम चौंककर कहा, 'अरे! जंगल में कहीं आग तो नहीं लगी क्या?' उन्होंने उठकर बाहर झांका, तो चंद्रमा का शीतल प्रकाश दिखाई दिया। फिर तो बरामदे में जब तक उनके शिष्य बातें करते रहे, तब तक वह प्रकाश छाया रहा। बातें बंद करते ही प्रकाश भी अदृश्य हो गया।

बंगाल के एक छोटे से गाँव में रहनेवाले इस महंत को पूरी घटना बहुत आश्चर्यकारी लगी। उन्होंने सोचा कि 'जिसकी बातें करने से ही इतना ऐश्वर्य दिखाई दे रहा है, उसमें कितना ऐश्वर्य होगा?'

इसी विचार ने उन्हें द्वारिका जाने के लिए विवश कर दिया। अपने दस-बारह शिष्यों के साथ वे यात्रा के लिए निकल पड़े। अनेक तीर्थों से होते हुए सौराष्ट्र में लोज गाँव पहुँचे और गाँव के बाहर पड़ाव डाला। दो शिष्यों को लेकर वे गाँव के सदाव्रत में भिक्षा लेने गए, तब भगवान स्वामिनारायण गद्दी पर विराजमान होकर सभी को भिक्षा दे रहे थे। महाराज के दर्शन मात्र से महंत को समाधि लग गई। समाधि में उन्होंने बद्रिकाश्रम में नरनारायण, श्वेतद्वीप में वासुदेव नारायण तथा गोलोक में राधाकृष्ण के दर्शन किए। उसके बाद अक्षरधाम में दिव्य सिंहासन पर विराजमान, अनंतकोटि मुक्तों से घिरे हुए, अपार-दिव्य-ऐश्वर्य युक्त भगवान स्वामिनारायण को देखा। दर्शन करते ही

महंत के मन में शांति हो गई। उनकी वृत्ति श्रीहरि में स्थिर हो गई।

भगवान स्वामिनारायण ने उनके शिष्यों से पूछा, 'तुम्हारे गुरुजी को पहले कभी ऐसा हुआ था?'

'ना महाराज ! ऐसा तो पहली बार हुआ है।' एक शिष्य ने कहा।

तभी श्रीजीमहाराज की दृष्टि से वे समाधि से जाग्रत हुए। महाराज ने उन्हें भिक्षान्न दिया, महंत शिष्यों सहित अपने पड़ाव की ओर लौटे। परंतु रात को महंत श्रीजीमहाराज से अकेले मिले। नम्रभाव से प्रार्थना करने लगे, 'हे प्रभु, आप तो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण हैं, कृपा करके मुझे आपकी सेवा में रखिए।' महाराज ने भी संमति दी। महंतजी ने अपनी पाँच सौ स्वर्ण मुद्रा श्रीजीमहाराज की आज्ञा के अनुसार शिष्यों को दे दी, तथा उन्हें समझा बुझाकर बिदा किया।

दीक्षा के पश्चात् महाराज ने उनका नाम रखा, स्वामी स्वयंप्रकाशानंदजी! वैराग्य की पराकाष्ठा तथा धर्म-नियम की दृढ़ता में कोई इनका सानी नहीं था। श्रीजीमहाराज की आज्ञा से अनेक स्थानों पर विचरण करके उन्होंने सत्संग का विकास किया। वचनामृत ग.अं. 24 में श्रीहरि ने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा है, 'स्वयंप्रकाशानन्द स्वामी का भगवान के स्वरूप का दृढ़ निश्चय, तथा माहात्म्य का भाव श्रेष्ठ है!'

21. ध्यानचिंतामणि

स्वामिनारायण संप्रदाय के आश्रितों के लिए भगवान स्वामिनारायण की स्मृति करने के लिए एक भक्तिपरंपरा स्थापित की गई है, जिसमें एक है रात को सोने से पहले उनकी स्मृति के पद बोले जाते हैं। प्रथम दस पदों को लीलाचिन्तामणि कहते है, और अंतिम पदों को 'ध्यानचिंतामणि' कहा गया है। जिन पदों के रचयिता है : सद्. प्रेमानंद स्वामी। जब ध्यानचिंतामणि के पद - 'वदुं सहजानंद रसरूप अनुपम सारने रे लोल' - सद्गुरु प्रेमानंद स्वामी श्रीजीमहाराज के समक्ष गाकर सुनाते थे तो महाराज बहुत प्रसन्न होते थे। एक बार उन्होंने कहा था, 'बहुत अच्छा कीर्तन-गान किया। इन कीर्तनों को सुनकर हमारे मन में ऐसा विचार हुआ कि इन्हें भगवान की मूर्ति का इस प्रकार का चिन्तन बना हुआ है, इसलिए, इन साधु को उठकर साष्टांग

दंडवत् प्रणाम करें! जिसके अन्त:करण में भगवान का ऐसा चिन्तन होता हो और यदि वह ऐसी वासना रखकर देह-त्याग करे, तो उसे पुन: गर्भवास भोगना ही नहीं पड़ेगा। जो पुरुष भगवान का ऐसा चिन्तन करते हुए जीता हो, तो भी उसने परमपद को प्राप्त कर लिया है। जैसे श्वेतद्वीप में निरन्नमुक्त हैं, वैसे ही वह भी निरन्नमुक्त हो चुका है। उसकी देहक्रियाएँ जितनी उचित होती हैं, उतनी सहजभाव से हो ही जाती हैं। जिसको भगवान के स्वरूप का इस प्रकार चिन्तन होता है वह तो कृतार्थ हो चुका है और उसे तो कुछ भी करना शेष नहीं बचा है। यदि किसी का देहत्याग भगवान के सिवा अन्य पदार्थों का चिन्तन करते हुए होगा, उसके दु:खों का अन्त कोटि कल्पों में भी नहीं हो सकेगा। (वच. ग.म. 48)

प्रत्येक सत्संगी को लीलाचिंतामणि के साथ-साथ ध्यानचिंतामणि का पाठ करने की भी आज्ञा दी गई है। शास्त्रीजी महाराज कहते थे कि महाराज की स्मृति के साथ इनका गान करने पर सद्गुरु निष्कुलानन्द स्वामी रचित भगवान स्वामिनारायण का बृहद् चरित्रग्रन्थ 'भक्तचिंतामणि' के एक पाठ करने का पुण्य प्राप्त होता है।

पद-1

वंदुं सहजानंद रसरूप, अनुपम सारने रे लोल;
जेने भजतां छूटे फंद, करे भव पारने रे लोल. 1
समरुं प्रगट रूप सुखधाम, अनुपम नामने रे लोल;
जेने भव ब्रह्मादिक देव, भजे तजी कामने रे लोल. 2
जे हरि अक्षरब्रह्म आधार, पार कोई नव लहे रे लोल;
जेने शेष सहस्त्रमुख गाय, निगम नेति कहे रे लोल. 3
वर्णवुं सुंदर रूप अनुप, जुगल चरणे नमी रे लोल;
नखशिख प्रेमसखीना नाथ, रहो उरमां रमी रे लोल. 4

पद-2

आवो मारा मोहन मीठडा लाल, के जोऊँ तारी मूरती रे लोल;
जतन करी राखुं रसिया राज, विसारुं नहि उरथी रे लोल. 1
मन मारुं मोह्युं मोहनलाल, पाघडलीनी भातमां रे लोल;
आवो ओरा छोगलां खोसुं छेल, खांतीला जोउं खांतमां रे लोल. 2

वहाला तारुं झळके सुंदर भाल, तिलक रूडां कर्या रे लोल;
वहाला तारा वामकरणमां तिल, तेणे मनडां हर्यां रे लोल. 3
वहाला तारी भ्रकुटिने बाणे श्याम, काळज मारां कोरियां रे लोल;
नेणे तारे प्रेमसखीना नाथ, के चित्त मारां चोरियां रे लोल. 4

पद-3

वहाला मुने वश कीधी व्रजराज, वालप तारा वहालमां रे लोल;
मन मारुं तलखे जोवा काज, टीबकडी छे गालमां रे लोल. 1
वहाला तारी नासिका नमणी नाथ, अधरबिंब लाल छे रे लोल;
छेला मारा प्राण करुं कुरबान, जोया जेवी चाल छे रे लोल. 2
वहाला तारा दंत दाडमनां बीज, चतुराई चावता रे लोल;
वहाला मारा प्राण हरो छो नाथ, मीठुं मीठुं गावता रे लोल. 3
वहाला तारे हसवे हराणुं चित्त, बीजुं हवे नव गमे रे लोल;
मन मारुं प्रेमसखीना नाथ, के तम केडे भमे रे लोल. 4

पद-4

रसिया जोई रूपाळी कोट, रूडी रेखावळी रे लोल;
वहाला मारुं मनडुं मळवा च्हाय के जाय चित्तडुं चळी रे लोल. 1
वहाला तारी जमणी भुजाने पास, रूडां तिल चार छे रे लोल;
वहाला तारा कंठ वच्चे तिल एक, अनुपम सार छे रे लोल. 2
वहाला तारा उरमां विणगुण हार, जोई नेणां ठेर रे लोल;
वहाला ते तो जाणे प्रेमी जन, जोई नित्य ध्यान धरे रे लोल. 3
रसिया जोई तमारुं रूप, रसिक जन घेलडा रे लोल;
आवो वहाला प्रेमसखीना नाथ, सुंदरवर छेलडा रे लोल. 4

पद-5

वहाला तारी भुजा जुगल जगदीश, जोईने जाऊँ वारणे रे लोल;
करनां लटकां करता लाल, आवोने मारे बारणे रे लोल. 1
वहाला तारी आंगळीयोनी रेखा, नखमणि जोईने रे लोल;
वहाला मारा चित्तमां राखुं चोरी, कहुं नहि कोईने रे लोल. 2
वहाला तारा उरमां अनुपम छाप, जोवाने जीव आकळो रे लोल;
वहाला मारा हैडे हरख न माय, जाणुं जे हमणां मळो रे लोल. 3

वहाला तारुं उदर अति रसरूप, शीतल सदा नाथजी रे लोल;
आवो ओरा प्रेमसखीना प्राण, मळुं भरी बाथजी रे लोल. 4

पद-6

वहाला तारी मूरति अति रसरूप, रसिक जोईने जीवे रे लोल;
वहाला ए रसना चाखणहार, छाश ते नव पीवे रे लोल. 1
वहाला मारे सुखसंपत तमे श्याम, मोहन मन भावता रे लोल;
आवो मारे मंदिर जीवनप्राण, हसीने बोलावता रे लोल. 2
वहाला तारुं रूप अनुपम गौर, मूरति मनमां गमे रे लोल;
वहाला तारुं जोबन जोवा काज, के चित्त चरणे नमे रे लोल. 3
आवो मारा रसिया राजीवनेण, मरम करी बोलता रे लोल;
आवो वहाला प्रेमसखीना सेण, मंदिर मारे डोलता रे लोल. 4

पद-7

वहाला तारुं रूप अनुपम नाथ, उदर शोभा घणी रे लोल;
त्रिवळी जोऊँ सुंदर छेल, आवोने ओरा अम भणी रे लोल. 1
वहाला तारी नाभी नौतम रूप, ऊंडी अति गोळ छे रे लोल;
कटिलंक जोईने सहजानंद के, मन रंगचोळ छे रे लोल. 2
वहाला तारी जंघा जुगलनी शोभा, मनमां जोई रहुं रे लोल;
वहाला नित निरखुं पिंडी ने पानी, कोईने नव कहुं रे लोल. 3
वहाला तारा चरणकमळनुं ध्यान, धरुं अति हेतमां रे लोल;
आवो वहाला प्रेमसखीना नाथ, राखुं मारा चित्तमां रे लोल. 4

पद-8

वहाला तारा जुगल चरण रसरूप, वखाणुं वहालमां रे लोल;
वहाला अति कोमळ अरुण रसाळ, चोरे चित्त चालमां रे लोल. 1
वहाला तारे जमणे अंगूठे तिल, के नखमां चिह्न छे रे लोल;
वहाला छेली आंगळीए तिल एक, जोवाने मन दीन छे रे लोल. 2
वहाला तारा नखनी अरुणता जोईने, शशीकळा क्षीण छे रे लोल;
वहाला रसचोर चकोर जे भक्त, जोवाने प्रवीण छे रे लोल. 3
वहाला तारी ऊर्ध्वरेखामां चित्त, रहो करी वासने रे लोल;
मागे प्रेमसखी कर जोडी, देजो दान दासने रे लोल. 4

22. आज्ञा

भगवत्-प्राप्ति की कामना रखनेवाले साधक के लिए भगवान तथा संत की आज्ञा का बड़ा महत्त्व है। शिष्य के लिए आज्ञा में ही सर्व शास्त्रों का सार रहता है। आज्ञापालन के सिवा अनंत प्रयत्न करने पर भी साधक अपने ध्येय में पूर्णतः सफल नहीं हो सकता। सद्गुरु निष्कुलानंद स्वामी ने कहा है :

शुं थयुं जप तप तीर्थे, शुं थयुं वळी जोग-जगने,
शुं थयुं विद्या गुण डहापण थी, जो न रह्यो हरि वचने।

अर्थात् यदि साधक श्रीहरि के वचन में नहीं रहा, और चाहे उसने जप, तप, तीर्थयात्रा भी की, अरे विद्या तथा सद्गुण भी प्राप्त किए किन्तु उसने कुछ नहीं किया है अतः गुरु तथा हरि की आज्ञा ही सर्वोपरि है। आज्ञा तथा उपासना दो पंख है। दोनों में से एक पंख भी न हो तो पक्षी उड़ नहीं पाएगा।

आज्ञापालन का निर्देश हमें 'शिक्षापत्री' से मिलता है। इस छोटे से ग्रन्थ के अनुसार त्यागी और गृहस्थों को श्रीहरि ने कुछ विशेष आदेश दिए हैं। उपरांत, भगवान के धारक संत द्वारा हमारे हित के लिए जो आदेश देते है, उसे भी आज्ञा कहा जाता है। शिक्षापत्री में भगवान स्वामिनारायण ने स्पष्ट लिखा है, 'जिसका आचरण शिक्षापत्री के अनुसार नहीं है, वह हमारे संप्रदाय से बाहर है...' सत्संगी होने के नाते हमें अपने आपके जीवन की जाँच करनी है कि हम कितना आज्ञापालन करते हैं।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है, 'भगवान को निरंतर प्रसन्न रखना हों, तो उनकी आज्ञा का लोप कदापि नहीं करना चाहिए।' हम जप, तप, व्रतादि साधन भगवान को प्रसन्न करने के लिए और मोक्षप्राप्ति के लिए ही करते हैं इसका सरल उपाय है - आज्ञापालन। इस विषय पर योगीजी महाराज एक दृष्टांत देते थे।

एक बार कार्तिक स्वामी व गणपतिजी एक ही कन्या के साथ विवाह करने के लिए उलझ पड़े। पार्वतीजी ने कहा, 'दोनों पृथ्वी की प्रदक्षिणा के लिए निकलो, जो मेरे पास पहले आ जाएगा, उसका विवाह इस कन्या से

होगा।' कार्तिक स्वामी ने अपने मोर पर सवार होकर उड़ान भर ली ! लेकिन गणपतिजी का तो मोटा शरीर और ऊपर से वाहन भी मंदगति चूहा ! वे बड़े परेशान थे, कि अब क्या किया जाए ?

तब माता ने उनकी सहायता की और कहा, 'बेटा गणेश, गाय को भी पृथ्वी का स्वरूप ही कहा जाता है। इसकी प्रदक्षिणा पृथ्वी की प्रदक्षिणा के समान ही मानी जाती है।' गणपतिजी ने गाय की प्रदक्षिणा कर ली और कन्या का वरण किया। इस प्रकार माता की आज्ञा पालने पर सुखपूर्वक अपने ध्येय में सफल हुए।

भगवान स्वामिनारायण के समय की एक और घटना भी यहाँ उपयुक्त है : भादरा गाँव में आठ किसान हरिभक्तों पर श्रीजीमहाराज का आज्ञापत्र आया कि यह पत्र मिलते ही तुरंत गढ़पुर आ जाओ। वह समय था खेतों में फसल काटने का ! अब आठ में से चार हरिभक्तों ने सोचा कि यह काम भी तो जरूरी है, ऊपर से महाराज कितने दिन रोके यह भी निश्चित नहीं है। अत: फ़सल की कटाई करके उसे सुरक्षित स्थान पर रखकर दो-तीन दिन में चले जाएँगे। जबकि शेष चार हरिभक्त तो खेत में लहराती फ़सल को भगवान के भरोसे पर छोड़कर सीधे गढ़डा पहुँच गए। महाराज ने उन्हें पन्द्रह दिन तक रोके रखा। चारों को महाराज रोज अपनी प्रसादी भी देते, कथावार्ता व दर्शन-समागम का सुख भी देते। समय होने पर जब वे भादरा लौटे तो गाँव के सभी खेत उजड़े हुए दिखाई दिए। किसी भी के खेत में एक पौधा भी नहीं बचा था। उन्होंने सोचा, 'हमारे खेत भी इस प्रकार उजड़ गए होंगे।' वे जब गाँव में आए और उन चार हरिभक्तों से पूछा, तो वे रोते हुए बोले, 'तुम्हारे जाने के बाद ही गाँव में बाबा साहब (बड़ौदा के महाराजा सियाजीराव गायकवाड़ का आतंककारी सूबा) की फौज़ आई थी। उनके घोड़ों ने गाँव में सभी के खेतों की फसल साफ कर दी। केवल तुम चारों के खेत यथावत् है। किसी से अन्दर घुसा भी नहीं जाता था ! यदि कोई प्रयत्न भी करता तो उसे बिजली-सा झटका लगता ! खेत के किनारे पर भगवान स्वामिनारायण की घोड़ी माणकी के खुर के निशान भी हैं ! तुम लोगों ने महाराज की आज्ञा पाली तो दर्शन भी हुए और फ़सल भी बच गई। हमने आज्ञा लोपकर दोनों खोया।'

आज्ञा के पालने व लोपने से होते लाभ व हानि का विवरण इस प्रसंग द्वारा प्राप्त होता है।

भगतजी महाराज अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी की आज्ञा पालने के लिए सदैव तत्पर रहते। जूनागढ़ में स्वामी ने एक बार कहा, 'जाओ गिरनार पर्वत को बुला लाओ।' और भगतजी निकल पड़े। उन्होंने कहा, 'मैं तो गिरनार के पास माथा टेककर कहूँगा कि स्वामी तुझे बुला रहे हैं, यदि वह नहीं आएगा तो वही विमुख ठहरेगा, पर मैं तो सम्मुख रहूँगा !' आज्ञापालन की ऐसी तत्परता देखकर गुणातीतानंद स्वामी बहुत प्रसन्न हुए।

उपनिषद् कालीन शिष्यों–सत्यकाम जाबालि, आरुणी, उपमन्यु आदि ऋषिकुमारों ने ऐसी ही आज्ञापालन की तत्परता दिखाई थी। आज्ञापालन से ही उन्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ था।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है, 'आज्ञापालन से ही वासना मिटती है।' उन्होंने आगे कहा है 'हम जो आज्ञा देते हैं, वह आज्ञा नहीं बल्कि भगवान की मूर्तियाँ हैं, पर जिसे ज्ञान नहीं है उसे ये बातें कभी समझ में नहीं आ सकतीं।' स्वामी की आज्ञा से जागा भक्त सोलह दिन तक गाँव सांखडावदर में घास की देखभाल करते रहे, किन्तु आज्ञापालन के प्रताप से जूनागढ़ में चल रहा उत्सव वे प्रत्यक्ष देख – सुन सकते थे।

श्रीजीमहाराज ने वचनामृत ग.म. 51 में कहा है, 'जो आज्ञा में रहता है, वही आत्मसत्तारूप रहता है।' अत: आज्ञापालन में सभी साधना का सार आ जाता है। आज्ञा तथा उपासना अक्षरधाम में जाने के दो पंख हैं। एक पंख द्वारा पक्षी उड़ नहीं सकता। उसी प्रकार एक ही साधन से हमारा कार्य सफल नहीं हो सकता। मुख्य आज्ञा '**निजात्मानं ब्रह्मरूपं देहत्रयविलक्षणम्**' है। अर्थात् परम एकांतिक संत को–अक्षरब्रह्म को अपनी आत्मा मानकर सभी क्रिया करनी चाहिए। अत: जिसे भगवान को प्रसन्न करना हो उसके लिए गुरु की कोई आज्ञा असंभव नहीं है, अत: आज्ञा का लोप होने नहीं देना चाहिए।

23. उपासना

श्रीजीमहाराज ने वचनामृत में कहा है कि उपासना के बिना साधक को कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने भी अपनी बातों में कहा है कि कदाचित् आज्ञापालन में त्रुटि हो जाए तो प्रायश्चित्त करके भी शुद्ध हुआ जा सकता है, पर यदि उपासना में त्रुटि हुई तो कल्याण होना असंभव है। अत: निर्विघ्न उपासना का योग्य ज्ञान आवश्यक है। उपासना क्या है? उपासना यानी उप + आसन, अर्थात् समीप आसन। भगवान के समीप रहना, भगवान का सांनिध्य प्राप्त करना ही उपासना का तात्पर्य है।

उपासना के लिए अक्षररूप या ब्रह्मरूप होना अनिवार्य है। श्रीजीमहाराज वचनामृत ग.म.3 में उपासना की रीति बताते हुए कहते हैं, 'उस ब्रह्म के साथ अपनी जीवात्मा का तादात्म्य स्थापित करके परब्रह्म की स्वामी - सेवकभाव से उपासना करनी चाहिए।' श्रीजीमहाराज के इस वचन के अनुसार उपासना तो सदा परब्रह्म की ही करनी चाहिए। उपासना के दो चरण हैं। परब्रह्म की उपासना हमारा साध्य है उसके लिए हमें अक्षर ब्रह्मरूपी साधन की आवश्यकता होती है। सर्वश्रेष्ठ रीति से परब्रह्म की उपासना केवल अक्षरब्रह्म के द्वारा ही संभव है। भगवान पुरुषोत्तमनारायण को प्रसन्न करने के लिए या उसके द्वारा जो ब्रह्मरूप हुआ हो, ऐसे अक्षरमुक्त के द्वारा ही संभव है। हमें भी अक्षररूप होना पड़ता है और अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना करना ही भगवान स्वामिनारायण का सिद्धांत है।

पुरुषोत्तम नारायण को सदा दिव्य गुणों से युक्त, सदा साकार, सर्वोपरि, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता तथा सदा प्रकट समझना और इसी का मनन करते हुए उनके सतत सांनिध्य का अनुभव करना ही उपासना है। परब्रह्म भगवान स्वामिनारायण, अनंत अमायिक और दिव्य गुणों के धारक है। वे सर्वगुण संपन्न, सर्व सुख के निधि तथा सर्व दोष से रहित हैं। वे अतिरूपवान व तेजस्वी हैं। सदा साकार हैं, सदा द्विमुज और किशोरमूर्ति हैं।

श्रीजीमहाराज सर्वोपरि हैं। वे जीव, ईश्वर, माया, अक्षरमुक्त तथा अक्षरब्रह्म से भी परे हैं। सभी के स्वामी हैं और वे ही एकमात्र स्वतंत्र हैं। जबकि जीव, ईश्वर, माया, मुक्तगण तथा अक्षरब्रह्म भी परब्रह्म के अधीन हैं। श्रीजीमहाराज ही सर्वकारणों के कारण, सर्व के नियंता, सर्व के आधार, सर्वावतारी तथा अति समर्थ हैं। उनकी इच्छा से ही विराट नारायण के द्वारा

अवतार उत्पन्न होते हैं। उन अवतारों में भगवान स्वामिनारायण का अनुप्रवेश था और रहेगा। भगवान ही अक्षरपर्यन्त सभी को अपने में लीन कर देने की शक्ति के धारक हैं। वे ही योगेश्वर हैं तथा योगकला के निधि हैं। पुरुषोत्तम भगवान अपने दिव्य अक्षरधाम में रहकर अनन्त कोटि ब्रह्मांड में स्वेच्छा से जैसा रूप प्रकाशित करना चाहे, कर सकते हैं। इस प्रकार मुमुक्षुओं को सुख देते हैं।

अक्षरधाम में अनंतकोटि मुक्तों के साथ अक्षरब्रह्म भी साकार स्वरूप में उनके चरणकमल की सेवा में रहे हैं।

भगवान स्वामिनारायण सर्वज्ञ हैं, अनंतकोटि ब्रह्मांडों के जीवप्राणीमात्र में तथा ईश्वर, अक्षरमुक्तों व अक्षरब्रह्म में अंतर्यामी रूप से रहे हैं। तथा उन सभी की क्रियाओं को अपने धाम में बैठे-बैठे ही प्रत्यक्षत: देखते हैं।

भगवान स्वामिनारायण सर्वकर्ता हैं। कर्तुं, अकर्तुं एवं अन्यथाकर्तुं शक्ति के धारक हैं। उनकी इच्छा के बिना सूखा पत्ता भी नहीं हिल सकता। सभी के कर्मफलप्राता भी ये ही हैं। उनकी प्रेरक शक्ति के बिना जीवप्राणीमात्र, ईश्वर, माया या अक्षर मुक्त भी अपना कार्य करने में असमर्थ हैं। उनकी इच्छा से ही अनंतकोटि ब्रह्मांड की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है।

भगवान स्वामिनारायण सदा दिव्य मूर्ति हैं। जिस प्रकार अक्षरधाम में अनंत ऐश्वर्यशक्ति है तथा वे दिव्य गुणों से संपन्न है उसी प्रकार पृथ्वी पर मनुष्य स्वरूप में भी वे दिव्य, अनंत शक्तिमान एवं ऐश्वर्य युक्त हैं। धाम में स्थित मूर्ति तथा यहाँ प्रत्यक्ष विचरण करती मूर्ति में कोई भेद नहीं है। पृथ्वी पर भगवान का मनुष्यभाव दिखाई देना उनकी लीला का ही एक अंग है।

भगवान पुरुषोत्तम नारायण जब जीव के कल्याणार्थ पृथ्वी पर अवतार लेते हैं, तब अपना अक्षरधाम, चैतन्यमूर्ति पार्षद और अपने तमाम ऐश्वर्य के साथ ही पधारते हैं। अत: 'भगवान के भक्त को, भगवान का स्वरूप अक्षरधाम सहित पृथ्वी पर विराजमान है, यही समझना चाहिए और दूसरों को भी यही समझाना चाहिए।' (वच. ग.प्र. 71) इस प्रकार हमें भगवान स्वामिनारायण को अक्षरब्रह्म के साथ ही समझना चाहिए और अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना ही सच्ची उपासना है।

सद्गुरु गुणातीतानंद स्वामी अनादि अक्षरब्रह्म का स्वरूप हैं। जैसे परब्रह्म एक और अद्वितीय है, उसी प्रकार अक्षरब्रह्म भी एक और अद्वितीय है।

अक्षरब्रह्म सत्, चिद्, आनंद है। वह अनादि तथा नित्य है। अक्षरब्रह्म भी सर्व मायिक और प्राकृत गुणों से रहित है। अक्षरब्रह्म अपने संबंध में आनेवालों को भी निर्गुण कर देते हैं। यह ब्रह्म जीव, ईश्वर तथा माया का कारण हैं, तथा उन सभी के आधार हैं। अक्षरब्रह्म अखंड, अविनाशी, निरंश, निर्विकारी, कूटस्थ तथा काल-माया से परे हैं। तीनों गुणों से परे गुणातीत हैं।

यह एक ही अनादि अक्षरब्रह्म निराकार, एकरस चैतन्य और चिदाकाशरूप से अनंतकोटि ब्रह्मांडों के आधार हैं। वही अक्षर धामरूप से पुरुषोत्तमनारायण एवं अनंतकोटि अक्षरमुक्तों को धारणकर रहा है। धामरूप अक्षर अमाप और विशाल है। उनके एक-एक रोम में अनंतकोटि ब्रह्मांड अणु की तरह उड़ते रहते हैं। अक्षर की विशालता के सामने इतने बड़े ब्रह्मांड भी अणु सदृश सूक्ष्म दिखाई देते हैं। अक्षर का सगुण स्वरूप भी है।

यही अक्षरधाम दिव्यपुरुषाकार रहते हुए पुरुषोत्तम नारायण की निरंतर सेवा में रहते हैं। मूर्तिमान अक्षरब्रह्म भगवान के सर्वोत्तम भक्त हैं तथा मुमुक्षुओं के लिए उपासना के आदर्श हैं। पुरुषोत्तम भगवान अक्षर में रहते हैं वैसे प्रकृतिपुरुष, अक्षर मुक्त या अन्य किसी में नहीं रहते हैं। अक्षरब्रह्म सेवक के रूप में अपने स्वामी पुरुषोत्तमनारायण की सेवा में निरन्तर रहते हैं। अक्षर और पुरुषोत्तम के बीच हमेशा के लिए सेवक-स्वामी अपृथक् संबंध रहा है। परमात्मा पुरुषोत्तम के बाद अक्षरब्रह्म ही सर्व-पूज्य हैं।

प्रकट अक्षरब्रह्म का संग करने से ही जीव ब्रह्मरूप बन सकता है। वच. कारि. 1 के अनुसार भ्रमरी का संग करके ही ढोला भ्रमरी बनता है, उसी प्रकार प्रकट अक्षरब्रह्म का संग करने से ही यह जीव ब्रह्मरूप हो सकता है और पुरुषोत्तम की उपासना का अधिकारी बनता है। तभी जीव को निर्विकल्प निश्चय की स्थिति प्राप्त होती है और आत्यंतिक मोक्ष के बाद अक्षरधाम की प्राप्ति होती है।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के अन्तर्धान होने के बाद भी कल्याण का द्वार बंद नहीं हुआ है। स्वामी ने अपनी बात में कहा है, 'मैं तो चिरंजीव हूँ।' अर्थात् अनादि अक्षरब्रह्म परम एकांतिक – परम भागवत संत के रूप में इस अवनि पर सदा प्रकट रहते हैं। इसी प्रकट ब्रह्मस्वरूप गुणातीत संत द्वारा श्रीजीमहाराज इस धरती पर सदा प्रकट रहते हैं। मुमुक्षु जीवों को ब्रह्मस्थिति प्रदान करके उनका आत्यंतिक कल्याण करते हैं।

श्रीजीमहाराज कहते हैं – 'ऐसे प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत द्वारा सर्व क्रिया करनेवाले भगवान स्वयं हैं, ऐसे संत तो स्वयं हरि है।'

इस साधु का संग करना ही कल्याण का सबसे बड़ा साधन है। ऐसे संत का दर्शन साक्षात् भगवान का दर्शन है। इसलिए यह संत तो सर्व जगत के आधारस्तंभ हैं। देह छोड़कर जिसे पाना होता है उसे, इस साधु की संगति से इसी देह द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। परमपद – मोक्ष की प्राप्ति सुलभ हो गई है। ऐसे साधु की सेवा करना भगवान की सेवा करने के तुल्य है। इस प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत का मन-कर्म-वचन से संग करके जो इनकी आज्ञा का पालन करते हैं, निर्दोष होकर ब्रह्मरूप हो जाते हैं। मोक्ष की प्राप्ति सरल हो जाती है।

इस पृथ्वी पर कल्याण का मार्ग चलता रहे इस हेतु भगवान स्वामिनारायण गुणातीत संत द्वारा सदा प्रकट हैं। वच. पंचाला 7 के अनुसार इस पृथ्वी पर से भगवान कभी अन्तर्धान होते ही नहीं। वे अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी द्वारा प्रकट थे। उसके बाद क्रमशः ब्रह्मस्वरूप भगतजी महाराज, ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज, ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज, और वर्तमान में प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज द्वारा प्रकट हैं। इस प्रकार भगवान स्वामिनारायण अक्षरब्रह्मस्वरूप संत द्वारा इस पृथ्वी पर सदैव प्रकट रहे हैं, मुमुक्षु जीवों का कल्याण कर, उन्हें अपने धाम का सुख प्रदान कर रहे हैं।

निष्कर्षरूप में, उपासना के विषय में हमें तीन बात ही मुख्यरूप से समझनी है : एक भगवान स्वामिनारायण सर्वावतारी पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण परब्रह्म है, गुणातीतानंद स्वामी अनादि अक्षरब्रह्म है। और आज अनादि अक्षरब्रह्म द्वारा ही श्रीजीमहाराज सदा प्रकट रहकर मुमुक्षु जीवों का कल्याण

करते हैं, वही मोक्ष का द्वार हैं, जो आज प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज हैं।

24. रामबाई

गुजरात राज्य में महेमदाबाद के पास कठलाल नामक एक छोटा-सा गाँव है। यहाँ एक ब्राह्मण स्त्रीभक्त रामबाई रहती थीं। सारे गाँव में ये ही एकमात्र सत्संगी महिला थीं। भगवान स्वामिनारायण के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा थी।

एकदिन वे कुए से पानी खींच रही थीं। उसी समय भगवान स्वामिनारायण संत-मंडली के साथ गाँव के रास्ते से गुजरे। रामबाई तुरंत दौड़ी-दौड़ी महाराज के पास पहुँचीं। नम्रता से हाथ जोड़ते हुए बोलीं, 'हे महाराज ! आज तो मेरे गाँव में पधारिए, मेरा घर पावन कीजिए। मैं आपकी यथायोग्य सेवा करूँगी। यहाँ तक आ गए हों तो मेरे घर चलना ही होगा। आपके पुनित चरणों के प्रताप से गाँव में भी सत्संग होगा।'

भगवान ने भाव से कहा, 'बाई, हम जानते हैं कि तुम बहुत भावुक हो, किन्तु हमें वरताल पहुँचने की जल्दी है। इसलिए हम आज तो यहाँ नहीं रुक सकते, लेकिन भविष्य में यहाँ जरूर आएँगे। अत: प्रसन्न होकर हमें जाने की अनुमति दीजिए।'

स्वयं अपने इष्टदेव की ऐसी मधुर वाणी सुनकर रामबाई से अधिक आग्रह नहीं हुआ। अपने इष्टदेव की इच्छानुसार आचरण करनेवाला ही आदर्श भक्त कहलाता है। रामबाई ऐसी ही भक्त थीं। श्रीहरि की प्रसन्नता में ही उन्होंने अपनी प्रसन्नता मानी। फिर पानी से भरा एक घड़ा लाकर सभी को प्रेमभाव से पानी पिलाया। फिर बोलीं, 'हे महाराज ! इस पानी के घड़े में आप अपने चरण का स्पर्श कीजिए।'

'तुम उस पानी का क्या करोगी ?' महाराज ने पूछा।

रामबाई ने कहा, 'महाराज, थोड़ा सा चरणामृत पीकर शेष सभी पानी गाँव के कुएँ में डाल दूँगी। ताकि इस प्रसादी का जल जाने-अनजाने में भी कोई पीएगा, वह आपका सत्संगी बनेगा। क्योंकि इस गाँव में मेरे सिवा और कोई सत्संगी नहीं है।'

रामबाई ने इष्टदेव के पास अपने लिए तो कुछ नहीं माँगा लेकिन सभी के कल्याण की कामना की! महिला भक्तों में भी कैसा उत्कृष्ट भक्तिरंग !

भगवान स्वामिनारायण के साथ आए हुए सुरा खाचर, सोमला खाचर आदि भक्त भी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने रामबाई से कहा, 'आप धन्य हैं, जो महाराज की ऐसी महिमा समझतीं हों।'

फिर भगवान ने प्रसन्न होकर पानी में चरण रखें। रामबाई धन्य हुईं महाराज संघ के साथ बिदा हुए, और रामबाई ने उस घड़े से थोड़ा पानी ग्रहण करके बाक़ी सब कुएँ में डाल दिया। गाँव के जिस भाग में यह कुआ है, वहाँ के तमाम लोग सत्संगी हुए, और आज भी उनके वंशजों में सत्संग के संस्कार चले आ रहे हैं। मात्र श्रीहरि के प्रसादीजल का कैसा अद्‌भुत प्रताप!

25. सुरा खाचर

लोया गाँव के ठाकुर सुराखाचर भगवान स्वामिनारायण के परम मित्र थे। उन्होंने इष्टदेव के साथ स्नेह के अटूट बंधन बाँध लिया था। अपना सारा जीवन सत्संगपरायण कर दिया था। मोटा शरीर, सिर पर बड़ी पगड़ी, और चेहरे पे सदा मुस्कान उनकी पहचान थी। वाक्‌पटुता में सुरा खाचर का कोई सानी नहीं था। अवसर देखकर ऐसे वचन बोलते कि राजा तो क्या त्यागी, तपस्वी और जोगी भी अपनी हँसी नहीं रोक पाते। श्रीहरि के परम सखा होने के बावजूद हर संत को भी मन, कर्म, वचन से आदर देते। छलकपट रहित, सदा सरल स्वभाव के कारण व्यवहार में उनको अनेक कष्ट झेलने पड़े, लेकिन उनका धैर्य अटल रहा।

एक रात की बात है। सुरा खाचर अपने घर में सोये हुए थे, कुछ चोर-लूटेरों ने आकर दीवार गिरा दी और एक बड़ा पिटारा उठा लिया ! लेकिन अपने भक्तों की हमेशा रक्षा करनेवाले भगवान स्वामिनारायण ने पिटारे में इतना वजन रख दिया कि चोर उसे उठा नहीं पाए, और गाँव के बाहर ही पिटारे को छोड़कर भाग निकले, सुबह होते ही लोगों ने पिटारा देखा तो ताज्जुब रह गए। जाँच-पड़ताल के बाद मालूम हुआ कि यह तो सुरा खाचर का पिटारा है ! लोगों ने जाकर उन्हें खबर दी। सुरा खाचर ने अपनी पत्नी

शांतिबा से कहा, 'देखा न! पिटारा तो कब से जाने वाला ही था, लेकिन भगवान स्वामिनारायण की कृपा है हम पर, कि हमारे खजाने की उन्होंने रक्षा की है! अब संकल्प करो, कि उसमें जो भी रुपये वगैरह निकले उनमें से आधा भाग भगवान स्वामिनारायण की सेवा में समर्पित करेंगे।'

शांतिबा भी उच्च कोटि की भक्त थीं, उन्होंने तुरंत संमति जताई। जाँच करने पर पता चला कि पिटारे से एक कौड़ी भी कम नहीं हुई थी!

शांतिबा ने सुरा भक्त से कहा, 'अब जाकर श्रीहरि को अपने गाँव आने का निमंत्रण दो, क्योंकि उन्होंने हमारी बहुत बड़ी रक्षा की है!'

सुरा खाचर भगवान को आमंत्रित करने के लिए कारियाणी गाँव में आए, जहाँ वस्ता खाचर के दरबार भवन में भगवान का निवास था।

सुरा खाचर ने महाराज से निवेदन किया, उसी समय गढ़डा के भक्तराज दादा खाचर ने भी भगवान को गढ़डा पधारने को न्यौता दे दिया ! और कहा, 'हे महाराज, लक्ष्मीवाडी में बैंगन की फ़सल बहुत अच्छी उतरी है, और वैसे भी बैंगन बहुत समय तक ताज़ा नहीं रह सकते, अतः आप पधारिए और संतों-भक्तों को बैंगन के शाकोत्सव का लाभ दीजिए। फिर आप चाहे कहीं पधारना!' और आगे कहा, 'हे महाराज, वैसे भी लोया में घी-दूध मिलता ही नहीं! शाक भी तो अच्छा नहीं मिलता, अतः गढ़डा ही पधारिए!'

सुरा खाचर अब कुछ बोल नहीं पाए। उनके तमाम मनोरथ अधूरे रह गए। लेकिन अब उनकी वाक्‌चातुरी काम आ गई। उन्होंने कहा, 'अरे महाराज, दादा खाचर कैसी बेतुकी बात करते हैं! आपके गुणगान करने के बजाए बैंगन का बखान करने लगे हैं ! लेकिन प्रभु, आप तो गरीब निवाज है! अतः लोया पधारें तो ठीक है!'

महाराज ने प्रसन्न होकर उन्हीं का निमंत्रण स्वीकार किया, 'जाइए, तैयारी कीजिए, हम लोया आएँगे!'

दो-पाँच दिन में सारे इलाके में खबर फैल गई कि भगवान स्वामिनारायण लोया पधार रहे हैं! और बड़ा शाकोत्सव मनानेवाले हैं ! लोगों ने गड्डे भर-भर के बैंगन तथा अन्य सामग्री लोया की ओर रवाना की।

महाराज भी समय आते ही लोया पधारे, प्रेमी भक्तों का प्रेम देखकर भगवान ने स्वयं 60 मन बैंगन का शाक बनाया, उसमें 12 मन घी तो वघार

में डाला! हलदी वाले हाथ से शाक बनानेवाली प्रभु की मूर्ति बड़ी नयन मनोहर थी। देवों को भी दुर्लभ यह दर्शन था। बाजरे के सगरे तैयार किए। प्रभुने स्वयं अपने हाथों से सबको शाक वगैरह परोसा। इस दिव्यलीला से सबको आजीवन स्मृति मिली। शाक में तो भगवान ने ऐसा स्वाद रखा था, कि किसी ने और कुछ खाया ही नहीं ! अब श्रीहरि ने दादा खाचर से मज़ाक़ करते हुए पूछा, 'दादा खाचर, बैंगन लोया के अच्छे या गढ़डा के?' उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभु, आप के सांनिध्य में तो रिद्धि-सिद्धि हाजराहजूर ही रहे, इसमें क्या कहना!'

सुरा भक्त और शांतिबा के भक्तिभाव से महाराज दो मास तक लोया रहे। संतों को उन्होंने ब्रह्म-परब्रह्म के स्वरूप की बड़ी तात्त्विक बातें इसी गाँव में कही। सब कोई भगवान के सुख में सराबौर हो गए। इस उपदेश की महिमा हमें 'लोया प्रकरण' के वचनामृत पढ़ने से समझ में आती है।

सुरा खाचर शास्त्र की गुत्थियों को कम समझते थे। परंतु श्रीजीमहाराज के प्रति उनका स्नेहभाव अनन्य था। अत: सत्संग की धर्ममर्यादा का पालन भी उनको सहज था। वे ब्रह्मचर्यव्रत का दृढ़तापूर्वक पालन करते। उन्हें अपने धर्म से डिगाने की किसी की हिम्मत नहीं थी।

एक बार जसदण गाँव के ठाकुर साहब ने सुरा खाचर को अपने घर आने का निमंत्रण दिया। लेकिन उनकी नियत अच्छी नहीं थी। ठाकुर ने उनके रहने की अच्छी व्यवस्था की। लेकिन सुरा खाचर को नियम से भ्रष्ट करना ही उनका उद्देश्य था।

ठाकुर साहब को भगवान स्वामिनारायण के प्रति अत्यंत द्वेष था। अत: उन्होंने एक कुलटा स्त्री को आधी रात के समय सुरा खाचर के कमरे में भेजा। उसने आकर दरवाजा खटखटाया। सुरा भक्त अचानक उठ बैठे, पूछा, 'कौन है?'

उस स्त्री ने कहा, 'मैं हूँ। यह मेरा घर है। मेरा बेटा अचानक बीमार हो गया है और दवाई लेने आई हूँ। दरवाजा खोलो।'

सुरा भक्त को स्त्री की नियत पर संशय तो हुआ, फिर भी दरवाजा खोला। औरत अन्दर आई और उसने भीतर से दरवाजा बंद कर लिया। धीरे-धीरे वह सुरा खाचर के समीप आती हुई भद्दे नखरे करने लगी। अब

सुरा भक्त सावधान हो गए। उन्होंने तलवार पर हाथ देकर गर्जना की, 'अब आगे मत आना। नहीं तो...' लेकिन यह माननेवाली नहीं थी। सुरा भक्त ने तलवार निकालकर घुमा ली ! औरत सहम गई और काँपने लगी। मौका देखकर सुरा भक्त दरवाजा खोलकर सीधे अपनी घोड़ी की ओर दौड़े। घोड़ी की रस्सी छोड़ने के लिए भी नहीं रुके, उसे तलवार से काट लिया, और तीव्रगति से वहाँ से निकल गए। ठाकुर साहब की मन की मन में रह गई।

सुरा भक्त जब सुबह होते गढ़डा पहुँचे। तो महाराज ने उनको देखकर सभी हरिभक्तों से कहा, 'देखो, देखो! हमारे जति आए हैं। एकांत में भी स्त्री का योग होने पर भी भ्रष्ट नहीं हुए।'

सचमुच, इस भक्तराज ने अपनी भक्ति द्वारा श्रीजीमहाराज को वश किया हुआ था।

26. फगुआ

भगवान स्वामिनारायण ने होली के उत्सव भी बहुत धूमधाम से मनाए थे। सारंगपुर में मनाया गया होली का उत्सव संप्रदाय में अत्यधिक प्रसिद्ध है। इस उत्सव के अवसर पर प्रसन्न होकर उन्होंने करजीसण आदि गाँवों की स्त्रीभक्तों को कुछ माँगने को कहा था। तब सभी ने मिलकर अद्‌भुत प्रार्थना की थी, उस प्रार्थना को पद्य में ढालकर निष्कुलानंद स्वामी ने अपने ग्रंथ 'भक्तचिंतामणि' में समाविष्ट की है। इसे होली के दिन दी हुई भगवान की प्रसादी मानते हुए यह प्रार्थना 'फगुआ' के नाम से संप्रदाय में प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है :

महाबळवंत माया तमारी, जेणे आवरियां नरनारी;
एवुं वरदान दीजिए आपे, एह माया अमने न व्यापे. 1
वळी तमारे विषे जीवन, नावे मनुष्य बुद्धि कोई दन;
जे जे लीला करो तमे लाल, तेने समजुं अलौकिक ख्याल. 2
सत्संगी जे तमारा कहावे, तेनो केदि अभाव न आवे;
देश, काळ ने क्रियाए करी, केदि तमने न भूलीए हरि. 3
काम, क्रोध ने लोभ कुमति, मोह व्यापीने न फरे मति;
तमने भजतां आडुं जे पड़े, मागिये ए अमने न नडे. 4

एटलुं मागिये छैये अमे, देज्यो दया करी हरि तमे;
वळी न मागिये अमे जेह, तमे सुणी लेज्यो हरि तेह. 5
केदि देशो मा देहाभिमान, जेणे करी विसरो भगवान;
केदि कुसंगनो संग म देज्यो, अधर्म थकी उगारी लेज्यो. 6
केदि देशो मा संसारी सुख, देशो मा प्रभु वास विमुख;
देशो मा प्रभु जक्त-मोटाई, मद मत्सर ईर्ष्या कांई. 7
देशो मा देहसुख संयोग, देशो मा हरिजननो वियोग;
देशो मा हरिजननो अभाव, देशो मा अहंकारी स्वभाव. 8
देशो मा संग नास्तिकनो राय, मेली तमने जे कर्मने गाय;
ए आदि नथी मागता अमे, देशो मा दया करीने तमे. 9
पछी बोलिया श्याम सुंदर, जाओ आप्यो तमने ए वर;
मारी मायामां नहि मुंझाओ, देहादिकमां नहि बंधाओ. 10
मारी क्रियामां नहि आवे दोष, मने समजशो सदा अदोष;
एम कह्युं थई रळियात, सहुए सत्य करी मानी वात. 11

(भक्तचिंतामणि : प्रकरण - 64)

27. अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी का उपदेशामृत

[1]

स्वामिनारायण हरे स्वामीजी ने बात कही, 'नंद राजा ने संपूर्ण पृथ्वी का धन एकत्रित किया और अंत में वही उसके मौत का कारण बना। चित्रकेतु राजा ने एक करोड़ स्त्रियाँ इकट्ठी की और अंत में दु:खी हुआ। यह मार्ग ही ऐसा है।'

निरूपण

इस संसार में सभी को स्त्री तथा धन में ही सुख दिखाई देता है। परंतु यहाँ अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी दो दृष्टांत देकर हमें समझा रहे हैं कि जगत के सभी सुख नाशवंत है।

नंद राजा को सारी पृथ्वी का धन इकट्ठा करने की सोची। फिर यह भी सोचा कि इतना सारा धन रखेंगे कहाँ? इसलिए वाराह भगवान को प्रसन्न

करके एक अस्थि का टुकड़ा प्राप्त किया। इस टुकड़े के कारण समुद्र में मार्ग बन जाता था। राजा अपना सारा धन समुद्र की तह में रख आता। धीरे-धीरे उसने प्रजाजनों का संपूर्ण धन हड़प लिया। किसी के पास कुछ बचा तो नहीं है ? ऐसे विचार से उसने एक पैसे में एक ऊँट बेचने के लिए निकाला। तभी एक स्त्री के बच्चे ने उसे खरीदने के लिए बहुत ज़िद्द की। माता ने बहुत समझाया पर वह न माना। अत: माता ने एक कब्र खुदवाकर उसमें से एक पैसा निकाला और ऊँट खरीद लिया। राजा को पता चला तो उसने सभी कब्र खुदवाकर मुर्दों पर रखे गए एक-एक सिक्के भी निकाल दिए!

नारदजी ने इस लोभी को सबक सिखाने की ठान ली। उन्होंने राजा के महल में आकर नंद राजा की पत्नी से कहा, 'नंद को जितना अपनी पहली रानी से प्रेम है, वैसा आपसे नहीं है।'

तब रानी ने कहा, 'नहीं तो, वे मुझ से बहुत प्यार करते है।'

नारदजी ने आग्रहपूर्वक कहा, 'नहीं, यदि ऐसा ही है, तो वे अपने साथ उस मृत रानी की हड्डी का टुकड़ा क्यों हरपल संभाल रखते हैं ?'

नारदजी के इन शब्दों से रानी के मन में शंका का अंकुर फूट निकला।

उसने पूछा, 'कहाँ है हड्डी का वह टुकड़ा ?'

'उनके पास ही है ! जब राजा लौटे तो देख लेना।' नारदजी ने कहा।

और नारदजी वहाँ से चल निकले। शाम को जब वे नंद राजा घर आए। रानी ने उन्हें भोजन के लिए बिठाया और तुरंत वहाँ पहुँची, जहाँ राजा के वस्त्र वगैरह रखे जाते थे उसने राजा के सभी कपड़ों में तलाश की आखिर हड्डी का वह टुकड़ा उसके हाथ लग गया ! वाराह भगवान द्वारा दी गई इस अस्थि को वह मृत रानी की अस्थि समझने लगी और गुस्से में आकर उसे धबकते चुल्हे में झोंक दी। अब राजा के पास आकर कहा, 'आपको अपनी मरी हुई पत्नी अधिक प्रिय है न ?'

राजा ने एकदम कहा, 'नहीं, नहीं, मैं तो तुमसे बहुत-बहुत प्यार करता हूँ, पुरानी बातें याद करके क्या फ़ायदा ?'

अब रानी ने स्पष्टता की, 'तो फिर उसकी अस्थि लेकर क्यों घूमते हों ? मैंने देखी, और अभी उसे चुल्हे में भी झोंक दी है !'

राजा यह सुनते ही सन्न रह गया। फिर अचानक कुछ सोचते हुए वह अपने कपड़े की जेब टटोलने लगा। उन्हें वह अस्थि नहीं मिली तो आघात से मूढ़ रह गया। वह समझ चुका था की वाराह भगवान से मिला टुकड़ा अब जल चुका है! उसे इतना सदमा लगा कि उसकी मौत हो गई।

चित्रकेतु राजा के करोड़ स्त्रियाँ थीं। वे शूरसेन देश के चक्रवर्ती राजा थे। करोड़ स्त्रियों के बावजूद उन्हें एक भी पुत्र नहीं था। एक बार अंगिरा ऋषि उनके घर पधारे। राजा ने उनका सम्मान के साथ आतिथ्य सत्कार किया। ऋषि प्रसन्न हुए। यज्ञ करके उसका प्रसाद राजा की सद्‌गुणी रानी कृतद्युति को दिया। कुछ समय के बाद कृतद्युति को पुत्र उत्पन्न हुआ। शेष रानियों को कृतद्युति से ईर्ष्या होने लगी। एक दिन कृतद्युति की अनुपस्थिति में अन्य रानियों ने उस बालक को ज़हर दे दिया। बालक की तत्काल मृत्यु हो गई। माता-पिता बहुत दु:खी हुए। इस प्रकार चित्रकेतु राजा को जिन स्त्रियों से अपार लगाव था, वे ही उसके लिए दु:खरूप साबित हुई। अंत में चित्रकेतु ने सभी स्त्रियों का त्याग कर दिया।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी इन दृष्टांतों से हमें समझाते हैं कि जगत के सारे सुख हक़ीकत में दु:खरूप हैं। एकमात्र भगवान ही सुख के सागर हैं। अत: मायिक सुखों के जाल से निकलकर केवल भगवान तथा संत का आश्रय प्राप्त करें और अपना कल्याण करे।

[2]

स्वामिनारायण हरे स्वामीजी ने बात कही, 'कभी अपने आपको दु:खी मत समझों। हमें जितनी आवश्यकता है, उतना तो मिल गया है। अधिक धन मिल जाने पर प्रभु का भजन नहीं होता, अत: भगवान नहीं देते हैं।'

निरूपण

स्वामी हमें समझाते हैं कि जो कुछ भी हमारे प्रारब्ध में लिखा है, भगवान ने हमें दिया है। पर्याप्त अन्न, वस्त्र मिल रहा है। अब संतोष मानकर केवल संत का आश्रय ग्रहण करके भगवान का भजन करना चाहिए। इससे अधिक धन की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। क्योंकि धन के उन्माद में हम भगवान को भूलकर अन्य व्यर्थ कार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं।

एक समय की बात है। एक धनिक सेठ के बंगले के ठीक सामने ही एक गरीब की झोंपड़ी थी। ये गरीब दंपती रोज कमाते और रोज खाते। शाम को वे जब लौटते तो सुखपूर्वक भजनभक्ति करके सो जाते। उन्हें दूसरे दिन की चिंता ही नहीं थी ! यही उनका दैनिक क्रम था। दोनों बहुत सुखी थे। उनका सुख देखकर सेठानी सोचती कि ये गरीब होने पर भी कितने सुखी हैं! अत: सेठानी ने दो एकबार सेठ को पूछा भी, परंतु सेठ जवाब टालते रहते। एक दिन सेठानी ने ज़िद्द ही कर ली। वे कहने लगी, 'हमारे पास इतनी दौलत है, फिर भी शांति नहीं, और यह झोंपड़ीवाला इतना सुखी क्यों है, हमें इसका रहस्य बताईए...'

आखिर सेठ ने धीरे से एक राज़ बताते हुए कहा, 'अरी भागवान, उन्हें जो मिलता है, उसी में दोनों संतोष मानते हैं, दोनों को अधिक धन का लालच ही नहीं है। इसी कारण दोनों सुखी है।'

किन्तु सेठानी को संतोष नहीं हुआ, उसने फिर पूछा, 'यह कैसे हो सकता है? बिना धन के भी सुखी!'

सेठ ने सोचा अब कोई युक्ति सोचनी पड़ेगी। एक दिन सेठ ने एक थैली में निन्यानवें रुपये रखकर उसे गरीब की झोंपड़ी में फेंक दिया। सुबह गरीब भक्त ने उसे देखा। रुपयों की गिनती की तो निन्यानवें रुपये थे। उसने सोचा कि इसमें एक रुपया जोड़ा जाए तो पूरे 100 हो जाए। बस, उसे रुपया कमाने की धून सवार हो गई। सुबह जल्दी काम पर जाता, रात को देर से आता। अब भजन-कीर्तन बंद हो गया। कुछ ही समय में उसके पास पूरे 100 रुपये हो गए। उसने सोचा, अरे वाह! यह तो बहुत अच्छी बात है, आज तक मुझे यह उपाय सूझा ही क्यों नहीं? यदि एक रुपया कमा सकता हूँ, तो 100 में से 200 भी तो बना सकता हूँ! अब उसे 200 रुपये बनाने की धून सवार हुई। उसकी नींद हराम हो गई। रात-दिन केवल रुपयों के बारे में ही सोचता रहता। अत: न भजन होता न कीर्तन! वह हमेशा दुखी रहने लगा। सेठ ने सेठानी को कहा, 'देखा, निन्यानवें का चक्कर लगते ही नींद हराम हो गई न।'

इसीलिए गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं कि जो कुछ हमें प्राप्त हुआ है, उसी में संतोष मानना चाहिए। अधिक धन से व्यवहार बढ़ जाता है और व्यवहार बढ़ने से सुख-शांति नहीं रहती। इस स्थिति में भगवान भी भूला

दिए जाते हैं। अतः भगवान की कृपा से जो कुछ मिला है, उसी में संतोष मानकर आनंद से रहना चाहिए।

[3]

स्वामिनारायण हरे स्वामीजी ने बात कही, 'भक्त पर यदि दुःखों के बादल भी बरसनेवाले हों तो भी भगवान या संत के आश्रय से वे टल जाते हैं। इसके अलावा कोटि साधनों के द्वारा भी ये टलनेवाले नहीं हैं।'

निरूपण

स्वामी बताते हैं कि बड़े से बड़े दुःख में भी भगवान या संत के प्रति अनन्य निष्ठा रखनी चाहिए। क्योंकि इन दुःखों को मिटाने में वे ही सक्षम हैं और कोई नहीं।

एक बार अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद थाणागालोल (जिला : जूनागढ़) गाँव में पधारे थे। यहाँ जसा राजगोर नामक गरीब किन्तु निष्ठावान सत्संगी रहते थे। उनके पास जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा था, अतः खेती करने पर भी उनका गुजारा मुश्किल से हो पाता था। ऐसी परिस्थिति के बावजूद वे यथाशक्ति संतों की सेवा-संभावना किया करते। एक दिन उन्होंने स्वामी से प्रार्थना की, 'स्वामी! हम बहुत गरीब हैं। उपरांत, जूनागढ़ जाने के मुख्य रास्ते पर ही मेरा गाँव है, यहाँ संत-भक्त आते ही रहते हैं, उनकी सेवा भी हम से ठीक तरह से नहीं हो पाती। खेत में कड़ी मेहनत के बाद भी कोई बरकत नहीं है।'

यह सुनकर गुणातीतानंद स्वामी गहरे विचार में डूब गए और कहा, 'तुम्हारे पास कुछ अनाज है?'

जसा ने कहा, 'हाँ स्वामी ! बाजरा है।'

इतना कहते ही उन्होंने एक पवाली भर बाजरा लाकर स्वामी के पास रख दिया। स्वामी ने उसे साथवाले साधु को देते हुए कहा, 'यह साथ में ले लो। जूनागढ़ जाकर, इसे भीगोकर सभी संतों को मुट्ठीभर बाँट देना।'

फिर स्वामी ने पूछा, 'जसाभाई! घर में कोई वस्त्र है?'

जसा भक्त तुरंत घर से एक लम्बा-सा कपड़ा ले आए। स्वामी ने उसमें से छलनी जितना कपड़ा फाड़ लिया। फिर घोड़ी पर सवार होकर जसा भक्त के खेत पर गए। खेत को देखकर कहा, 'यह ज़मीन तो सोना

उगलनेवाली है। इस बार तुम कपास बो देना।'

स्वामी की आज्ञानुसार जसा भक्त ने वहाँ कपास बो दिया। कुछ समय में कपास की फ़सल लहलहाने लगी। फसल इतनी ऊतरी कि जसा भक्त का सारा कर्ज़ उतर गया। फिर भी पाँच सौ रुपये बचे ! उसमें से उन्होंने संतों को भोजन की सेवा दी। इस प्रकार जसा भक्त के दिन बदल गए।

स्वामी की कृपा से बंजर धरती भी उपजाऊ हो गई ! जिन भक्तों को ऐसे संत का आश्रय है, वे कभी दुःखी नहीं हो सकते !

पांडवों को भी अपार दुःख आए थे। वनवास के कष्ट, लाक्षागृह में मारने का प्रयास, तथा महाभारत का युद्ध ! परंतु एकमात्र श्रीकृष्ण भगवान के दृढ़ आश्रय के कारण उनकी ही विजय हुई। भगवान के आश्रय के बिना तो अतुलनीय बल और बुद्धि भी व्यर्थ है। सभी के दुःख मिटानेवाले तो केवल भगवान और उनके संत ही हैं।

[4]

स्वामिनारायण हरे स्वामीजी ने बात कही, 'भगवान जीवों के गुनाहों की ओर नहीं देखते। भगवान के आगे निष्कपट भाव से 'मैं गुनाहगार हूँ' कहने पर भगवान उसके गुनाह माफ कर देते हैं।'

निरूपण

भगवान और संत बहुत दयालु हैं। हमारे असंख्य गुनाहों की ओर नहीं देखते हुए कृपा करके हमें सत्संग में निभाते हैं। हमारी अनेक गलतियों को वे भूल जाते हैं। हम जानते हैं कि वरताल में शुकानंद स्वामी के शिष्य साधु हरिस्वरूपदासजी ने अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी का भरी सभा में अपमान किया। स्वामी तो दयालु थे, उनको जरा-सा भी रंज नहीं हुआ ! मंदिर में दर्शन करके लौटते समय उन्होंने अपने गले से गुलाब का हार उतारकर बड़े स्नेह से हरिस्वरूपदासजी को पहनाया।

नारायणप्रसाद नामक एक द्वेषी साधु ने मोजीदड़ गाँव (जिला : सुरेन्द्रनगर, गुजरात) के पास नारायण घाट पर योगीजी महाराज का अपमान किया था। एक बार यही नारायणप्रसाद विपत्ति में फँसे हुए सारंगपुर आए। योगीजी महाराज ने उनकी बहुत सेवा की। भोजन भी खिलाया! कितने

दयालु ! अपने अपमान करनेवाले पर भी कितनी करुणा!

अनेक दोषों से युक्त अपराधी जीव भगवान की शरण में जाकर कहे कि 'हे स्वामी ! मैं गुनाहगार हूँ' तो भगवान उसे माफ कर देते हैं, उसे शुद्ध कर देते हैं। बोचासण गाँव के मुखिया हीराभाई ने शास्त्रीजी महाराज की शरण स्वीकार की और अपने अनेक अपराधों का इकरार किया, तो शास्त्रीजी महाराज ने भी अपनी कृपादृष्टि से उसे तमाम व्यसनों से मुक्त कर दिया।

भगवान तो जीवों के गुनाहों को माफ करते ही हैं, परंतु जीव को चाहिए कि वह भगवान की अहंशून्य होकर, या सच्चे भाव से प्रार्थना करे! गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं कि डेढ़ पहर दिन चढ़ने से पूर्व ही प्रार्थना करते हैं तो भगवान अपने भक्तों के गुनाह माफ कर देते हैं। जीव का स्वभाव ही ऐसा है कि अन्य अनेक साधन करता है, पर भगवान से क्षमा माँगने में हिचकिचाता है।

[5]

स्वामिनारायण हरे स्वामीजी ने बात कही, 'राजा को पानी नहीं पिलाया तो भी अपने संकल्प के अनुसार उसने किसान को इनाम में गाँव दे दिया। जिस प्रकार जीव अपना स्वभाव नहीं छोड़ते, उसी प्रकार भगवान भी जीव का मोक्ष करने का अपना स्वभाव नहीं छोड़ते।'

निरूपण

एक राजा एक दिन जंगल में शिकार करने गए। शिकार का पीछा करते हुए वे बहुत दूर तक निकल गए। इसी उधेड़बून में उनके साथी भी उनसे बिछड़ गए। तभी राजा को प्यास लगी। आस-पास में कहीं भी पानी का प्रबन्ध होने की संभावना नहीं थी। आगे चलकर उन्होंने एक किसान को खेत में काम करते देखा। राजा ने सोचा यहाँ पानी मिल सकता है। राजा ने संकल्प किया कि यदि वह किसान मुझे पानी पिलाएगा तो उसे इनाम के रूप में मैं एक गाँव भेंट में दूँगा। लेकिन इस ओर किसान ने सोचा, 'ऐसे हिंसक व्यक्ति को पानी नहीं पिलाना चाहिए।' उसने राजा के देखते ही पानी की मटकी ज़मीन पर लुढ़का दी। पूरा पानी बह गया। राजा देखता ही रह गया, फिर भी राजा ने संकल्प किया था इसलिए उसे एक गाँव भेंट में दे दिया!

इस दृष्टांत से गुणातीतानंद स्वामी समझाते हैं कि जीव भगवान तथा संत के आश्रय में आने पर भी अपने स्वभाव नहीं छोड़ते, तो भगवान भी अपना मोक्ष करने का स्वभाव कैसे छोड़े ? मग्निराम देवीवाला भी पैसा पड़ाने के बूरे आशय से श्रीहरि के पास आया था, परंतु उनको तो उसका मोक्ष करना था, तो उसकी देवी से ही महाराज ने अपनी महिमा कहलवाई, वह सत्संगी बना। अंत में उसे साधु बनाकर उसका मोक्ष किया। इस प्रकार भगवान किसी के अपराधों की ओर नहीं देखते, किन्तु उसका भी कल्याण करते हैं।

28. बंधिया के डोसाभाई

'आप सब बंधिया से आ रहे हो? वहाँ हमारे भक्तराज डोसाभाई क्या कर रहे हैं? उनके हाल-चाल कैसे हैं?' भगवान स्वामिनारायण ने बंधिया से आए हुए वणिकों से पूछा।

वणिक बोले, 'हम तो गले तक संसार में डूबे हुए हैं, परंतु आपके डोसाभाई तो शिखापर्यन्त व्यवहारकार्यों में डूबे हुए हैं। भगवान का स्मरण करने का उनके पास समय ही कहाँ है! अरे! सुबह नहाने-धोने का भी समय नहीं है। पर आपके सत्संगी हैं, इसीलिए आप उसकी प्रशंसा किए जा रहे हो।'

भगवान यह सुनकर मुस्कुराए और कहा, 'यदि हम डोसाभाई को त्यागी दीक्षा देकर संत बना दें तो आप लोग सत्संगी बनेंगे?'

वणिक सब सोचने लगे कि अभी-अभी डोसाभाई ने गाँव के सब किसानों से गुड़ खरीदा है। अतः व्यापार का बड़ा लाभ छोड़कर वे साधु की दीक्षा कैसे ले सकते हैं? ऐसा सोचकर वणिकों ने सावधानी से कहा, 'महाराज, यदि आपके डोसाभाई साधु बन जाते हैं, तो हम लोग आपके आश्रित जरूर बनेंगे!'

भगवान स्वामिनारायण ने कहा, 'ठीक है, आपका विवाह-कार्य संपन्न हो जाने पर हम से मिलकर ही घर लौटना!'

बंधिया गाँव के जैन वणिक बारात लेकर गढ़डा आए हुए थे। उनको बिदा करते ही भगवान स्वामिनारायण ने तुरंत भगुजी को बुलाकर कहा,

'यह लो गेरुए वस्त्र, और घोड़े पर सवार होकर बंधिया जाओ। डोसाभाई को यह चिट्ठी देना और कहना कि तुरंत त्यागी के वस्त्र धारण करें और गढ़डा पहुँचे।'

भगुजी तुरंत बंधिया जाने के लिए रवाना हुए।

डोसाभाई गुड़ की गाड़ियाँ तुलवा रहे थे। सुबह के ग्यारह बजे थे। स्नानादि विधि की भी फ़ुर्सत न मिलने के कारण दातून भी अभी तक उनके कानों में खोंसा हुआ था। भगुजी को देखते ही उन्होंने सब काम छोड़कर उन्हें दण्डवत्प्रणाम किए, और हाथ जोड़कर पूछने लगे, 'कहिए, महाराज की क्या आज्ञा है?'

भगुजी ने चिट्ठी देते हुए कहा, 'यह गेरुए वस्त्र दिए हैं, और कहा है, इसे तुम धारण कर लो, और महाराज तुम्हें गढ़डा बुला रहे हैं।'

महाराज की चिट्ठी पढ़ते ही डोसाभाई ने त्यागी के वस्त्र धारण कर लिए और मुण्डन करवाकर तुरंत भगुजी के साथ चल पड़े। न तो घर पर संदेशा भिजवाया, न ही धंधे की जिम्मेदारी किसी को सौंपी ! दोनों गढ़डा पहुँचे। डोसाभाई को देखकर महाराज प्रसन्न हो गए।

बंधिया के जैन वणिक विवाह के बाद महाराज से मिलने आए। तभी संतमंडल में बैठे डोसाभाई की ओर निर्देश करते हुए महाराज ने पूछा, 'इन्हें पहचानते हों?'

जैन महाजन तो बिलकुल स्तब्ध रह गए। उनको डोसाभाई से ऐसी उम्मीद तो कतई नहीं थी। फिर ढ़ीले-ढ़ाले स्वर में कहने लगे, 'हे महाराज ! डोसाभाई सचमुच महान भक्त हैं। हम इस महान वैरागी जीव को हमारे जैसे ही समझते थे। हमने इन्हें पहचानने में भूल की है हमें क्षमा करें!' भगवान स्वामिनारायण ने सब को आशीर्वाद देकर बिदा दी।

फिर श्रीजीमहाराज ने पुनः डोसाभाई से श्वेत वस्त्र देते हुए आदेश दिया, 'डोसाभाई, लो, अपने गृहस्थाश्रमी के वस्त्र पहनकर घर लौट जाओ। माँ की आजीवन सेवा करना। आप तो गृहस्थ होने पर भी त्यागी ही हों। संसार तुम्हें बांध नहीं सकता।'

डोसाभाई आज्ञा अनुसार घर लौटे और पूरा जीवन अपने इष्टदेव की सेवा में ही बीता दिया। भगवान स्वामिनारायण के प्रति उन्हें अनन्य श्रद्धा

थी। महाराज की निष्ठा में कभी रत्तीभर भी फर्क नहीं पड़ता। श्रीजीमहाराज की प्रत्येक आज्ञा के पालन में वे सदा तत्पर रहा करते थे।

डोसाभाई वणिक जाति के थे। पहले सरधार गाँव में रहते थे। रामानंद स्वामी के अनन्य शिष्य थे। रामानंद स्वामी के देहत्याग के बाद श्रीजीमहाराज के दर्शन मात्र से उनको भगवान के स्वरूप होने का निश्चय हो गया।

कुछ समय के बाद महाराज ने उन्हें कुटुम्बसहित बंधिया बुला लिया। दरबार मूलु खाचर को सिफ़ारिश करके डोसाभाई को घर-जमीन आदि की व्यवस्था करवा दी। तब से डोसाभाई बंधिया रहे।

हमें भी डोसाभाई की तरह महाराज की महिमा समझकर तथा माहात्म्य सहित निश्चय करके उनकी आज्ञा पालने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

29. मूलजी और कृष्णजी

कच्छ की विरान धरती के रास्ते पर भूज से मानकूवा की ओर एक घुड़सवार अत्यंत तेज गति से जा रहा हैं... दिल में जोश है, आँखों में उमंग है। घोड़े को इतनी तेज गति से दौड़ा रहा है, मानो आज कोई उसकी परीक्षा ले रहा है, या जैसे आज उसके हाथ कुबेर का खजाना लग गया है।

मानकूवा गाँव में प्रवेश करते ही एक बड़े अहाते वाले घर के सामने उसने घोड़ा खड़ा किया... दौड़ते हुए घर में गया: 'मूलजी ! मूलजी ! मैंने भगवान देखें! चलते-फिरते... जीते-जागते...!'

'हो ही नहीं सकता !' मूलजी आश्चर्य से खड़े हुए।

'मैं सत्य कह रहा हूँ मूलजी, संघ के साथ मैं गढ़डा गया था। स्वामिनारायण भगवान के दर्शन किए... वे सचमुच, भगवान ही हैं.... मूलजी, हज़ारों को समाधि करवाते हैं... अनंत प्रकार के ऐश्वर्य बताते हैं...' सवार मारे खुशी के हाँफते हुए बोला जा रहा था। उसके मुख पर आनंद की लालिमा छाई हुई थी।

'कृष्णजी,' मूलजी ने प्रश्नवाचक मुद्रा में कहा : तुमने भगवान को देखा, और उन्हें छोड़कर यहाँ आ गये? संसार में भगवान से अधिक क्या है? या तो वे भगवान नहीं है, या फिर तुमने पहचानने में गलती की है...'

'मैं जानता था कि तुम्हें विश्वास नहीं होगा, मैं यहाँ तुम्हें ले जाने के लिए आया हूँ...'

और वह दिन भी आ गया। एक संघ कच्छ से गढ़डा जाने के लिए रवाना हो रहा था। दोनों ही युवा मुमुक्षु इसी संघ के साथ हो लिए।

दोनों परम मित्र थे। भिन्न-भिन्न जाति के होने पर भी दोनों इतने घूल-मिल गये थे कि जुड़वा भाई लगते! एक-सा भेष, एक-सी रुचि, एक-सा वैराग्य और एक-सी भक्ति! दोनों मित्र मानकूवा गाँव की शान थे। बचपन से साथ में खेले, साथ में पढ़े और साथ में बड़े हुए। भक्ति और वैराग्य उनके खून में समाया हुआ था। संघ गढ़डा आ पहुँचा। मूलजी-कृष्णजी की अन्तरात्मा खिल उठी। सहजानंद स्वामीजी के चरणों में समर्पित होने का निर्णय लेकर दोनों भक्त गढ़डा में ही रुक गए। संघ लौट गया। थोड़े ही दिनों में महाराज के नाम पर पत्र आने शुरु हुए, हमारे पुत्रों को वापस भेजो...!

महाराज ने दोनों को बुलाया। पत्र दिखाते हुए कहा, 'आप यहाँ नहीं रह सकते... दोनों घर जाओ, आपके रिश्तेदार आपको बुला रहे हैं...'

दोनों ने बहुत बिनती की पर महाराज टस से मस न हुए। अन्ततः दोनों उदास मन से कच्छ लौट जाने को विवश हुए। रास्ते में 'वाणियानी वंथली' गाँव आया। यहाँ लाधा सुथार नामक सत्संगी रहते थे। दोनों युवक इनके यहाँ नौकरी करने लगे। कामकाज करते हुए भी भजन और वैराग्य की भावना बढ़ती ही गई... इसी तरह छह माह बीत गए। घरवाले सोचते कि दोनों महाराज के पास हैं और महाराज सोचते कि दोनों घर पहुँच गए होंगे... अब सभी जगह तलाश शुरु हुई। आखिरकार एक दिन उत्सव क दिन दोनों महाराज के दर्शनार्थ आ पहुँचे ! 40 रुपये भेंट करके दोनों ने महाराज के चरण छुए। महाराज ने पूछा, 'कहाँ थे इतने दिन ? तुम्हारे घरवाले तो तलाश करते-करते थक गए...!'

'महाराज...' मूलजी ने कहा, 'हम लाधा भक्त के वहाँ रुके हुए थे। कुछ समय तक नौकरी की, किन्तु अब वापस लौटने की इच्छा नहीं है। हमें तो त्यागी होकर भगवान का भजन करना है...'

'इसके लिए तुम लोगों को अपने-अपने माता-पिता के हाथों से लिखित अनुमति-पत्र लाना होगा। तभी तुम्हें रखा जा सकता है।' महाराज ने कहा।

महाराज के आशीर्वाद लेकर दोनों भक्त अतिशीघ्र घर पहुँचे। माता-पिता की अनुमति माँगी, परंतु दोनों ही निराश हुए।

त्यागमार्ग में अड़चनें तो आती ही हैं, दोनों भक्त जानते थे, अत: धैर्य बटोरते हुए अपने-अपने हृदय में वैराग्य का रंग भरने लगे।

इसी दौरान एक दिन श्रीहरि विचरण करते हुए मानकूवा आ पहुँचे... दोनों मुमुक्षुओं के आनंद का पार न रहा... दो दिन बीते। दोनों भक्तों की दृढ़ता देखने के लिए महाराज ने एक युक्ति सोची।

अदाभाई दरबार के घर के बाहर खुले मैदान में महाराज सभा में विराजमान थे। कथा चल रही थी, तभी महाराज ने हाथ में कैंची लेकर कहा, 'सच्चे सत्संगी आगे आओ, आज तो सभी को त्यागी करना है...'

सभा स्तब्ध हो उठी। कुछ लोग तो धीरे-धीरे पीछे सरकते हुए नौ दो ग्यारह हो गए, जो बैठे हुए थे, वे आपस में बतिया रहें थे कि आज महाराज के तेवर ठीक नहीं लग रहे हैं, हम भी खिसक लें तो ठीक रहेगा...।

आश्चर्य इस बात का था कि जो स्वयं भगवा अंगीकार करने के लिए तरस रहे थे, वे गाँव के बाहर खेत में काम कर रहे थे। दोनों वहाँ से वापस लौट रहे थे कि किसी ने बताया, 'आज महाराज के दर्शन करने मत जाना, नहीं तो साधु बना देंगे! आज तो उनकी दृष्टि ठीक नहीं लगती !'

दोनों प्रसन्न हो गए। तुरंत दौड़ते हुए महाराज के पास पहुँचे और प्रार्थना करने लगे, 'महाराज! हमें त्यागी कीजिए।'

'साधु होना कोई बच्चों का खेल नहीं है, बहुत कठिन रास्ता है।' महाराज कहने लगे, 'कई दिनों तक भूखे रहना, द्वेषी बाबाओं की मार खाना, ठंडी-गर्मी सहन करना आदि अनंत दु:खों से भरा है यह रास्ता ! अत: जाओ और अच्छी तरह सोचकर आना...'

दोनों मुमुक्षु गाँव के बाहर एकांत में आ पहुँचे। मन को समझाने लगे, 'अरे मनवा, इस जन्म में परमेश्वर का भजन नहीं किया तो क्या गधे, कुत्ते या बकरी के जन्म में करेंगे ? भगवान के भजन बिना अनेक योनि में जन्म लेना पड़ेगा, कीड़े मकोड़ों की तरह जीना भी कोई जीना है ! हर जन्म में दु:ख तो है ही, इससे तो अच्छा है कि यह देह भगवान के लिए कुर्बान करके अनंत जन्मों को दु:ख से बचा लूँ! फिर तो हमेशा-हमेशा के लिए

शांति है... परम सुख है... सच्चिदानंद है... बोल क्या करना है?' लखचौरासी का दु:ख या अक्षरधाम का सुख - क्या भोगना है?' अचानक उनकी आत्मा की आवाज़ आई, 'महाराज को प्रसन्न करना है...'

दोनों पुन: महाराज के पास आए, और कहा, 'महाराज ! मन की तो हाँ है, आप संमति दें...' इतना कहकर कृष्णजी अपने अँगरखे की गाँठ खोलने लगे, तभी मूलजी ने तो एक ही झटके में गाँठ तोड़ दी, अब इसे कहाँ पहनना है, कि इसे खोलने बैठे?!

महाराज प्रसन्न होकर बोले, 'आप परमहंस बन चुके हैं।' पर इसके बाद का कथन असह्य था। महाराज ने कहा, 'हमारी आज्ञा से आप गृहस्थाश्रम में ही रहो...' दोनों के सर पर आसमान टूट पड़ा। कसौटी की घड़ियाँ बहुत भारी पड़ रही थी। लोगों में वे हँसी के पात्र बन गए, निंदा और तिरस्कार बरसाने में रिश्तेदार भी पीछे न रहे। अपनी पत्नियों के लिए भी घृणा के पात्र बने।

दो-दो बार महाराज ने उन्हें मना कर दिया था, पर अभी तक उनके भीतर से वैराग्य की ललक कम नहीं हुई थी। दोनों के भीतर एक ही विचार चलता, 'जीवन का अमूल्य समय बीता जा रहा है, इस देह का कोई भरोसा नहीं है, महाराज की सेवा-समागम को छोड़कर हम दूसरे कार्यों में प्रवृत्त हों, यह हमारे लिए योग्य नहीं है। संसार के बंधन हमे स्वयं ही काट देने चाहिए... हमें अब हमारा जोबन और रूप का क्या करना है?' दोनों ने ही अपने अंगों पर प्रहार कर दिया।

महाराज को इस बात का पता चला। उन्होंने तुरंत पत्र लिखा, 'हमारी इच्छा के विरुद्ध ये दोनों न करने का कार्य कर रहे हैं, अत: कोई भी उनसे बोलने-चालने का व्यवहार न रखे। किसी को उनकी सेवा-शुश्रूषा करने की आवश्यकता नहीं है।'

दरबार अदाभाई ने इस पत्र को पढ़कर कहा, 'इन दोनों की सेवा मैं करूँगा। भले ही महाराज मुझ पर अप्रसन्न हों, उनसे क्षमा माँग लूँगा...' लोगों ने दोनों के साथ इनको भी उपेक्षा का पात्र बना दिया...

अदाभाई ने दोनों की सेवा की। कुछ ही दिनों में वे स्वस्थ हो गए। गाँव में सत्संगियों की सभा में इन तीनों को धुत्कारते हुए, कुत्तों की तरह

बाहर निकाला जाता... फिर भी तीनों जन बाजार के बीच धूल में बैठकर कथा-कीर्तन सुनते रहते। लोग उन्हें यहाँ से भी भगाने के लिए जबरदस्ती करने लगे। अदाभाई ने कहा, 'अरे भाईयों, हम तो बाजार में बैठते हैं, यहाँ से तो कोई कुत्तों को भी नहीं उठाता, तो क्या हम कुत्तों से भी गये गुजरे हैं?' इस तरह निर्मानी रहना किसी सच्चे साधु के बिना असंभव है। पर असंभव को भी संभव बनाए यही इन मुक्तों की पहचान थी।

इस प्रकार के अपमान, तिरस्कार और देह के कष्ट के बाद मूलजी-कृष्णजी ने स्वतः ही भगवे कपड़े रंगवाकर धारण कर लिए।

इस प्रकार महाराज के परमहंस बनकर गढ़डा की राह पकड़ी।

महाराज ने दोनों को पहचान लिया पर जान बुझ कर अनजान बनते हुए कहा, 'आप किसके परमहंस हैं?'

'किसके! आपके हैं, महाराज।'

'क्या नाम हैं आपका?'

'नामरूप तो मिथ्या है, महाराज!' दोनों ने हाथ जोड़ते हुए कहा।

महाराज ने कहा, 'आप तो बड़े सिद्ध बन गए हो...' तत्पश्चात् पार्षदों को बुलाकर कहा, 'दोनों को यहाँ से बाहर निकालो...' पार्षद दोनों को धक्के मारकर बाहर निकालने लगे। दोनों ही घेला नदी के तटपर जाकर ऊँचे स्वर से भजन गाने लगे। रात निकलती जा रही थी। चारों ओर नीरव शांति का वातावरण था। उनके भजन के सूर और बुलंदी में उनके विरह की वेदना रह-रहकर बहने लगी थी। महाराज अपनी खटिया पर बेचैन होकर बैठ जाते। पार्षदों से कहते, 'उन कच्छी परमहंसों को और दूर हटाओ... हमें नींद नहीं आती!!'

कैसे आती? उन निर्दोष साधुओं की ऐसी कठिन परीक्षा लेने का महाराज को भी रंज था... परंतु पूर्व के संचित कर्मों को जलाकर दोनों को शुद्ध करना आवश्यक था। इसे महाराज के सिवा कौन जा सकता था ? वह रात बीत गई।

दूसरी रात को भी कीर्तनों के सूर बहने लगे। महाराज ने कहा, 'इन कच्छियों ने अभी तक हमारा पीछा नहीं छोड़ा।'

पार्षद पुनः उनके पास पहुँचे और कहा, 'तुम लोग और भी आगे

बीहड़ में चले जाओ...'

'तो क्या यह गाँव है?' मूलजी ने कहा, 'हम तो बीहड़ में ही तो बैठे हैं, और यहीं पर कीर्तन गाएँगे।' फिर आगे बोले कि, 'यह तो महाराज की आज्ञा से हम शांत हैं, वरना हम लोग कच्छी है, अच्छे अच्छों की शान ठिकाने लगा सकते हैं, पर महाराज के साधु हुए हैं, अब कच्छीपन कहाँ रहा?'

महाराज को इस बात की जानकारी हुई तो वे बोल पड़े, 'कितनी सहनशीलता!' तत्पश्चात् अति स्नेह से कहने लगे, 'उन कच्छी परमहंसों का प्रेम से गाया हुआ कीर्तन हमें इस कमरे और खटिया सहित खींचता है... हमारे लिए उन्होंने अपार दुःख सहन किए हैं... दोनों को बुला लाओ...'

दोनों को बुलाया गया। दोनों को दूर से आते हुए देखकर महाराज ने उठकर स्वयं दंडवत् प्रणाम करने लगे। समीप आते ही दोनों को गले से लगा लिया। सभी की आँखों से हर्षाश्रु छलक पड़े। महाराज ने सभी संतों-भक्तों को बताया, 'हमने इनका श्वान की तरह तिरस्कार किया, फिर भी इन्होंने हमें नहीं छोड़ा।' दोनों महाराज के चरणों में गिर पड़े। वहाँ उपस्थित सभी लोग गद्गदभाव से इस दृश्य को देख रहे थे। दूसरे ही दिन उन दोनों को विधिवत् दीक्षा दी गई। एक का नाम 'सर्वज्ञानंद' रखा गया उन्हें अहमदाबाद मंदिर के महंत के रूप में नियुक्त किया गया। दूसरे का नाम 'घनश्यामानंद' रखा। वे आजीवन जूनागढ़ रहे। दोनों आजीवन अलग रहे, पर सत्संग में उनकी यादें युगल स्वरूप में संचित रही हैं...

जब कभी भी श्रद्धा, अटलता और नीड़रता की त्रिवेणी में स्नान करना हो तो इन दोनों मुमुक्षुओं की स्मृति कर लेने से पवित्रता छा जाती है।

30. महिमा

भगवान स्वामिनारायण सर्व अवतार के अवतारी एवं सर्वकारण के कारण पूर्ण पुरुषोत्तमनारायण हैं। वे सर्व कर्ता, सदा साकार, सर्वोपरि, सर्वज्ञ, दिव्य और सदा प्रकट हैं। वे सर्व दोषों से रहित, सर्व मायिक गुणों से रहित, निर्दोष तथा अनंत कल्याणकारी गुणों से युक्त हैं। उनके समान ऐश्वर्य, रूप, गुण या सामर्थ्य अनंतकोटि ब्रह्मांड में किसीका नहीं है। वे अक्षरब्रह्म,

अक्षरमुक्त, माया, ईश्वरों और जीवों से भी परे हैं। सभी के आधार हैं, सभी के लिए उपासना करने योग्य हैं। उन्हें माया या माया के बंधन लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर सकते। इस प्रकार की स्पष्ट समझ के साथ दृढ़ निश्चय करना ही, पुरुषोत्तमनारायण की महिमा है।

अक्षरब्रह्म भी पुरुषोत्तम की तरह एक तथा अद्वितीय है। सद्‌गुरु गुणातीतानंद स्वामी अनादि मूल अक्षरब्रह्म का अवतार हैं। श्रीजीमहाराज के सर्वोत्तम आदर्श भक्त हैं। अक्षरब्रह्म भी माया, ईश्वर और जीवों से परे हैं। वे भी सर्व जगत के कारण और आधार हैं। अक्षरब्रह्म भी सर्व दोषों से रहित है। मुमुक्षुओं के लिए भक्ति के आदर्श हैं। अक्षरब्रह्मरूप होने के बाद ही जीव पुरुषोत्तम की भक्ति के अधिकारी बन सकते हैं, तथा अक्षरधाम में पुरुषोत्तम की सेवा में रह सकते हैं। अक्षरब्रह्म की ऐसी महिमा समझनी चाहिए।

हमें प्राप्त हुए परम एकांतिक संत के स्वरूप को गुणातीत समझना चाहिए। उनके द्वारा भगवान स्वामिनारायण इस पृथ्वी पर अखंड विचरण करते हुए मुमुक्षुओं का कल्याण कर रहे हैं। भगवान स्वामिनारायण इस संत में नखशिखा पर्यन्त सम्यक् प्रकार से रहे हैं। वे उनसे अणुमात्र भी दूर नहीं होते। उनका स्वरूप दिव्य, निर्दोष और मायारहित समझना चाहिए। जो मनुष्य मन, कर्म, वचन एवं निर्दोषभाव से उनकी सेवा करता है, वह तीन गुण, तीन अवस्था और तीन देह से परे होकर ब्रह्मरूप हो जाता है।

श्रीजीमहाराज, अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी एवं प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत के संबंधवाले प्रत्येक भक्त को भी ब्रह्म की मूर्ति के समान मानना चाहिए। भगवान से संबंधित होने के कारण उनका अवगुण नहीं लेना चाहिए। उनके साथ द्वेष भी नहीं रखना चाहिए। उद्धवजी गोपियों की महिमा समझते थे, वैसी ही महिमा भगवान के भक्तों की भी समझनी चाहिए।

साधु के निरंतर संग से ही उपर्युक्त महिमा समझी जा सकती है। जो पुरुष यह महिमा समझ चुका है उसे किसी के साथ वैर या द्वेष नहीं रहता। सहज रूप से ही सत्संग में संप, सुहृद्‌भाव व एकता का प्रवर्तन होता रहता हैं। भक्तों को निरंतर स्वयं के दोष ढूँढकर उन्हें दूर करने के प्रयास करने चाहिए। महिमा समझनेवाला भक्त कभी धर्ममर्यादा का लोप होने नहीं देता। वह अपने आपको कृतार्थ और पूर्णकाम समझकर आनंदरस में निमग्न रहता

है। 'मेरा कल्याण निश्चित है – मैं अक्षरधाम में जाऊँगा' भक्त ऐसा मानने लगता है। महिमा सहित की जानेवाली भक्ति ही निर्विघ्न भक्ति है।

31. कल्याण

कल्याण का अर्थ है मोक्ष या मुक्ति। मोक्ष अर्थात् मोह का क्षय। परम एकांतिक संत की सेवा तथा सत्संग से जीव अनादि अज्ञान और कर्मबंधन से मुक्त होता है, ब्रह्मरूप होता है तथा पुरुषोत्तम भगवान की सेवा का अधिकारी होता है, वही मुक्ति या कल्याण कहलाता है। मुक्ति यानि परमपद – अक्षरधाम की प्राप्ति।

श्रीजीमहाराज ने वच. पंचाला 1 में कहा है कि 'पशु से अधिक सुख मनुष्य में है, उससे भी अधिक सुख राजा का है, उससे अधिक इन्द्र का है, उससे अधिक बृहस्पति का, उससे ब्रह्मा का, उससे भी अधिक वैकुंठलोक का, उससे अधिक गोलोक और उससे भी अक्षरधाम का सुख अत्यधिक है।'

उपरांत, 'अक्षरधाम के आगे अन्य देवलोकों को नरकतुल्य कहा है।' (वच. सा. 11) क्योंकि देवलोक अक्षरधाम के सामने तुच्छ है। देवलोक से भी अंत्यत: पृथ्वी पर आकर जन्म-मरण के चक्कर में फँसना पड़ता है, गर्भवास धारण करना पड़ता है। जब कि अक्षरधाम में पहुँचने के बाद पुन: पृथ्वी पर आना नहीं पड़ता। सदा के लिए भगवान के सांनिध्य की प्राप्ति होती है।

शास्त्र में कल्याण के अनेक प्रकार बताए हैं, परंतु अक्षरधाम की प्राप्ति और पुरुषोत्तम की निरंतर सेवा के लिए आत्यंतिक कल्याण अनिवार्य है और यह अति दुर्लभ है।

ऐसा आत्यंतिक कल्याण या तो साक्षात् फुरुषोत्तमनारायण के संग द्वारा या परम एकांतिक संत अर्थात् प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत के संग द्वारा ही होता है। प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत के सत्संग से जब पुरुषोत्तम के स्वरूप का यथार्थ निश्चय होता है और जीव तीन गुण, तीन अवस्था और तीन देह से परे होकर ब्रह्मरूप होता है तब आंत्यतिक कल्याण होता है। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, और माहात्म्यज्ञान युक्त भक्ति की सिद्धि परम एकांतिक संत के योग से ही प्राप्त होती है। तत्पश्चात् जीव का कल्याण होता है।

32. सुभाषित

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥ 1 ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ 2 ॥

सुख और दुःख में जो स्थिर हैं; जिसकी दृष्टि में मिट्टी, पत्थर तथा सोना समान है तथा जिसे प्रिय-अप्रिय, निंदा-स्तुति, मान-अपमान, मित्र-शत्रु के प्रति समभाव है। अपने सभी कार्यों में जिसे कर्ता होने का अभिमान नहीं है, ऐसा मनुष्य तीनों गुणों से परे गुणातीत कहलाता है। (1, 2) (गीता : 14-24, 25)

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ 3॥

ब्रह्मभाव को प्राप्त हुआ प्रसन्नचित्त मनुष्य न तो कभी शोक करता है और न ही उसे कोई अपेक्षा है, वह सर्व भूतों में समभाव से रहता हुआ मेरी भक्ति को प्राप्त करता है। (3) (गीता : 18-54)

निजात्मानं ब्रह्मरूपं देहत्रय-विलक्षणम् ।
विभाव्य तेन कर्तव्या भक्तिः कृष्णस्य सर्वदा ॥ 4 ॥

स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह के इन तीन प्रकारों से विलक्षण रहती अपनी जीवात्मा को ब्रह्मरूप मानकर सदा काल श्रीकृष्ण भगवान की भक्ति करनी चाहिए। (4) (शिक्षापत्री : 116)

गालिदानं ताडनं च कृतं कुमतिभिर्जनैः।
क्षन्तव्यमेव सर्वेषां चिन्तनीयं हितं च तैः॥ 5 ॥

कुमतिवाले दुष्टजनों के द्वारा गाली देने या मारने पर भी साधु को सहन ही करना चाहिए। परंतु प्रतिकार के रूप उन्हें अपशब्द कहना या मारना नहीं चाहिए बल्कि उनका हित ही सोचना चाहिए। (5) (शिक्षापत्री : 201)

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ 6॥

जिन गोपियों ने अपने संबंधीजनों और आर्यों के धर्ममार्ग का त्याग करके वेदों को भी तलाशने योग्य मुकुंद भगवान की पदवी का भजन किया था; जिनके चरणों के स्पर्श से पावन हुए गुल्म, लता, औषधि के मध्य मुझे भी कोई स्थान मिले अर्थात् कोई तृण या कीट बनकर गोपियों के चरणरेणु के स्पर्श करने योग्य बनूँ, यही कामना करता हूँ। (6)

(श्रीमद् भागवत : 10-47-61)

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत् स्मरणादपि क्वचित् ।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कथं पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ 7 ॥
अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥ 8 ॥

हे भगवान! अनायास ही आपके नाम का श्रवण-कीर्तन करने या प्रणाम करने तथा स्मरण करने से श्वपच भी तत्काल पवित्र हो जाता है, तो आपके दर्शन से कितनी पवित्रता व कृतज्ञता होगी! (7)

बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस श्वपच के जिह्वाग्र में आप ही का नाम रहता है, वह श्वपच भी आपके नामोच्चारण द्वारा भक्ति करके श्रेष्ठ बनता है। उपरांत, जिन्होंने आप का नाम लिया है, तीर्थों में स्नान किया है, वे ही सदाचारी हैं और वेदों के अभ्यासी हैं। (8) (श्रीमद् भागवत : 3-33-6, 7)

धर्मस्त्याज्यो न कैश्चित् स्वनिगमविहितो वासुदेवे च भक्ति
र्दिव्याकारे विधेया सितघनमहसि ब्रह्मणैक्यं निजस्य ।
निश्चत्यैवान्यवस्तून्यणुमपि च रतिं सम्परित्यज्य सन्तः
तन्माहात्म्याय सेव्या इति वदति निजान् धार्मिको नीलकण्ठः ॥ 9 ॥

वेदशास्त्र में कथित सदाचाररूपी धर्म का किसी को (ब्रह्मादिक देव से लेकर महान परमहंस, ब्रह्मवेत्ता, संत, संन्यासी, सिद्धपुरुष आदि) कदापि त्याग नहीं करना चाहिए तथा अति तेजस्वी अक्षरधाम में विराजमान दिव्य साकारमूर्ति श्री वासुदेव भगवान की भक्ति में लीन रहना चाहिए। अपनी आत्मा को ब्रह्मरूप मानकर भगवान के अलावा अन्य पदार्थों में से आसक्ति का त्याग करके, परमात्मा पुरुषोत्तम नारायण का माहात्म्य जानने के लिए एकांतिक संत की सेवा करना चाहिए। ऐसा उपदेश श्री धर्मदेव के पुत्र श्री नीलकंठ वर्णी अपने आश्रितों को दे रहे हैं। (9) (सत्संगिजीवन : 5-55-28)

दृष्टाः स्पृष्टा नता वा कृतपरिचरणा भोजिताः पूजिता वा
सद्यः पुंसामघौघं बहुजनिजनितं घ्नन्ति ये वै समूलम् ।
प्रोक्ताः कृष्णेन ये वा निजहृदयसमा यत्पदे तीर्थजातं
तेषां मातः प्रसङ्गात्किमिह ननु सतां दुर्लभं स्यान्मुमुक्षोः ॥ 10 ॥

'जिन सत्पुरुषों के दर्शन-स्पर्श करने से, नमस्कार एवं परिचर्या करने से मुनुष्यों के अनेक जन्मों में किए गए पापों का तत्काल नाश होता है। उपरांत, जिन सत्पुरुषों को श्रीकृष्ण भगवान ने अपने हृदयसमान प्रिय कहा है, तथा जिनके चरण में अनेक तीर्थों का निवास है। हे माता! ऐसे सत्पुरुषों का संग मिल जाए तो मुमुक्षुओं को कौन सी प्राप्ति दुर्लभ है? कोई भी अर्थ सिद्ध करना शेष नहीं रहेगा।' इस प्रकार श्रीहरि अपनी माता भक्तिदेवी को सत्संग की महिमा बता रहे हैं। (सत्संगिजीवन : 1-32-46)

न रोधयति मां योगो, न सांख्यं धर्म एव च ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ 11 ॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दासि तीर्थानि नियमा यमाः ।
यथाऽवरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥ 12 ॥

श्रीकृष्ण उद्धव को बता रहे हैं कि जिस प्रकार मैं सत्संग द्वारा वश होता हूँ, वैसे योग, सांख्य (तत्त्वविवेक), धर्म वेदाध्ययन, तप, संन्यास, यज्ञ, बावड़ी आदि का निर्माण करवाना, दक्षिणा, व्रत, देवपूजन, मंत्र, तीर्थ, नियम और यम इत्यादि साधनों से भी वश नहीं हो सकता।

(श्रीमद्भागवत : 11-12-1, 2)

33. भक्तराज मगनभाई

भक्तराज मगनभाई अफ्रीका में सत्संग के प्रणेता थे। अफ्रीका में उनके भगीरथ प्रयत्न के कारण ही सत्संग का प्रचार व प्रसार हुआ। इस तरह इस महाद्वीप में अक्षरपुरुषोत्तम की उपासना प्रवर्तित हुई।

इनका जन्म गुजरात के चारुतर प्रदेश खेड़ा जिले के वसो नामक गाँव में संवत् 1957 के श्रावण वदी एकादशी के पवित्र दिन (दि. 15-8-1901) हुआ। शिक्षा पूर्ण होने के बाद सन् 1919 में वे अफ्रीका गए और वहाँ रेलवे बोर्ड में नौकरी करने लगे।

सन् 1929 में वे युगान्डा देश के कीब्वेझी गाँव में स्टेशन मास्टर थे। उसी समय खेड़ा जिले के गाना गाँव के परम भक्त हरमानभाई का तबादला भी इसी स्टेशन पर हुआ। मगनभाई का इनके साथ संपर्क हुआ। मगनभाई के सुषुप्त संस्कार जाग्रत हो उठे। कुछ ही दिनों में उन्होंने अपने सारे व्यसनों को तिलांजलि दे दी। हरमानभाई से वचनामृत का पाठ सुनकर उनकी जिज्ञासा बढ़ती गई। अब उनका तबादला गाँव मकीन्डु के स्टेशन मास्टर के रूप में हुआ, किन्तु दोनों मित्र टेलिफोन द्वारा संपर्क में रहा करते। हरमानभाई ने स्वामी निर्गुणदासजी को पत्र से मगनभाई की पहचान करवाई। धीरे-धीरे मगनभाई की ज्ञानपिपासा निर्गुण स्वामी के पत्रों द्वारा तृप्त होती चली। इसी बीच ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज के पत्रयोग से उन्हें एक अभूतपूर्व अनुभव हुआ और उनके सारे संकल्प शांत हो गए !

शास्त्रीजी महाराज की प्रेरणा से वे सच्छास्त्रों का गहन अध्ययन करने लगे। इस तरह अक्षरपुरुषोत्तम, आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म-परब्रह्म के शुद्ध सनातन ज्ञान पर उनकी दृष्टि पड़ी। यहीं से उनका जीवन परिवर्तन शुरू हुआ। अब वे प्रभुभक्ति का पथ चुनकर दिव्य आनंद के समुद्र में निमग्न रहने लगे। मगनभाई ने अपना सारा जीवन श्रीजीमहाराज और शास्त्रीजी महाराज की सेवा में समर्पित कर दिया। उन्हीं का ध्यान, मनन और नाम रटन करना ही मगनभाई का एकमात्र ध्येय बन चुका था।

शास्त्रीजी महाराज के प्रति उनका प्रेम चरमसीमा पर था। श्रीजीमहाराज और गुरुहरि शास्त्रीजी महाराज को याद करते-करते वे प्राय: रो पड़ते। उनकी ऐसी दिव्य भक्ति, निस्वार्थ प्रेम, आँखों में निश्चय की दृढ़ता, पारदर्शी हृदय, कोमल मन और सरल-शुद्ध आचरण जो कोई एकबार भी देख लेता, प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। वचनामृत एवं अन्य शास्त्रों का निरूपण करने में मगनभाई का जवाब नहीं था।

अफ्रीका में आयोजित होते अनेक हिन्दू उत्सवों में मगनभाई सत्संग की बातें किया करते। उन्होंने अनेक मुमुक्षुओं को शास्त्रीजी महाराज के स्वरूप की पहचान करवाकर उन्हें सत्संग के आश्रित किए। उनकी ऐसी बातों का बड़ा प्रभाव पड़ा। कितने ही लोगों ने शराब, माँसाहार तथा अन्य व्यसनों का त्याग किया और धर्माचरण के रास्ते पर चल पड़े।

युगान्डा में मगनभाई की जहाँ-जहाँ नियुक्ति हुई, वहाँ उन्होंने लोगों को सत्संग के रंग से ही रंगा ! कीब्वेझी, मकीन्डु, गीलगील, कीसुमु, टरोरो, जीन्जा, नमासागली आदि अनेक स्थानों पर उन्होंने सत्संग सम्मेलन आयोजित करके मुमुक्षुओं को सत्संग की नई दिशा दी। यहाँ रहते पुराने सत्संगियों से संपर्क स्थापित करके उनके हृदय में नई चेतना का संचार किया और उन्हें पुनः सत्संग प्रवृत्ति में सक्रिय कर दिया।

ई.स. 1934 में मगनभाई के शुभ हस्तों से पूर्व अफ्रीका सत्संग मंडल की स्थापना कीज़ाबे में हुई। यहाँ अनेक भिन्न-भिन्न धर्म व जातियों के भक्तों को उन्होंने सत्संग की ओर अभिमुख किया।

अंत में जहाँ सत्संग का लेशमात्र भी योग नहीं था, शराब का पानी की तरह प्रयोग होता था ऐसे टरोरो गाँव में उनका तबादला हुआ। पहले यही स्थान पर हरमानभाई भी रहे थे परंतु सत्संग करवाने के उनके प्रयास विफल रहे थे। मगनभाई को शास्त्रीजी महाराज ने आशीर्वाद दिए, 'प्रयत्न करो सत्संग होगा।' और सचमुच मगनभाई के अथक प्रयासों से युगान्डा के प्रवेशद्वार टरोरो में अभूतपूर्व सत्संग हुआ। जीवों को अंधकार के गर्त से निकालकर भगवान के दिव्य प्रकाश की ओर प्रेरित करना, वास्तव में बड़े पुण्य का कार्य है, जो मगनभाई ने किया था। टरोरो से क्रमशः सारे युगान्डा में सत्संग विस्तीर्ण हुआ। अपने आत्मबल और गुरुहरि के कृपाबल द्वारा वे निर्धारित लक्ष्य को पूरा करके ही दम लेते थे।

हरिभक्तों के लिए उनके मन में गहरा आत्मीय लगाव था। हरिभक्तों के विरह में भी आँसू बहाते उनको कईयों ने देखा है।

गृहस्थ होने के उपरांत एक संत जैसा उनका जीवन था। गुरुहरि की प्रसन्नता ही उनके लिए सबकुछ थी। ब्रह्मस्वरूप शास्त्री महाराज प्रायः कहते, 'मैं मगनभाई के द्वारा अफ्रीका में कार्य कर रहा हूँ, अतः उनका सत्संग करें।'

इन शब्दों की प्रतीति उनके द्वारा दिए गए प्रवचनों और असंख्य चमत्कारों से होती है। धर्म, नियम, निश्चय, पक्ष, पतिव्रता भक्ति, शूरवीरता आदि अनेक गुणों से युक्त मगनभाई वास्तव में एक महान भक्त थे। इतनी कर्मठता और अनेक हरिभक्तों का आदर प्राप्त करके भी वे कदापि अपने

आप को महान नहीं मानते ! हमेशा अहंशून्य-दासभाव से ही सत्संग की सेवा करनेवाले वे भगवत्सुख के भोक्ता थे। यही उनका सब से बड़ा गुण था।

संवत् 2008 के भाद्रपद कृष्णा पंचमी को सोमवार के दिन दि. 8-9-1952 को प्रात: 3 बजे अचनाक हृदय बंद हो जाने से वे अक्षरनिवासी हुए। सभी गहरे शोक में निमग्न हो गए।

आज अफ्रीका तथा इंग्लैण्ड में सत्संगरूपी वटवृक्ष खिला है, जिसका श्रेय मगनभाई के पुरुषार्थ को समर्पित है ! विदेश की धरती पर सब से पहले अफ्रीका से सत्संग प्रसार का प्रारंभ हुआ, और ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज व ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज के मार्गदर्शन एवं विचरण से यह पूरी धरती के कोने-कोने तक विस्तीर्ण हो चुका है !

धन्य है ऐसे भक्तराज को !

❖ ❖ ❖